बिखरे-बिखरे मन

डॉ० [illegible]

श्री गंगाप्रसाद बिस्सा स्मृति संस्थान,
बीकानेर द्वारा
शिक्षा एवं संस्कृति प्रचार योजना में
प्रदत्त भेंट

रचयिता

BIKHRE-BIKHRE MUN

(Novel)

Dr. Rajananda

Price Rs. 32.00

प्रथम संस्करण, 1985

मूल्य : बत्तीस रुपये

प्रकाशक
रचयिता
शाहदरा, दिल्ली-32

प्रमुख वितरक
हेमन्त प्रकाशन
1/2248 रामनगर, शाहदरा, दिल्ली-1100032

मुद्रक
विकास आर्ट प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-32

बस इतना ही

धारणाएँ, आग्रह नहीं, आवेश बन जाती हैं। आवेशों में भावनात्मक ताकत और वेग होता है, जो उदारता अपनाने के बजाये अड़ता है। ये आवेश तीखा संघर्ष झेलते हैं। 'बिखरे-बिखरे मन' उपन्यास मे मैंने बहुत घरेलू वातावरण लिया है, इसलिये शायद इसके पात्रो की छवियाँ आपको अपने घर में, स्वयं अपने मे मिल जायें।

मैंने कोशिश की है इन पात्रो की इच्छाएँ, इनकी जिज्ञासाएँ, इनके आन्तरिक-बाहरी संघर्षों को प्रस्तुत करूँ। अगर इनका संघर्ष किसी विकसित होती हुई दृष्टि-दिशा की ओर संकेत कर पाता है, तब मैं अपने को सफल समझूंगा।

आपको यह उपन्यास निजी लगे तो श्रम को सार्थक मानूंगा।

—राजानन्द

बिखरे-बिखरे मन

महीना-भर हुआ, इस घर में आये। बल्कि महीना-भर हुआ इस शहर मे आये। बल्कि महीना-भर इसलिए हुआ कि महीना-भर हुआ नौकरी मिले।

पहला खत माँ को लिखा—कमरा मिल गया है। कम्पनी की नौकरी जाते हुए माह हो गया। मैंने खत जल्दी नही लिखा, कि पैर टेक लूँ। रहने के लिए छत देख लूं, तब लिखूं। दस-बारह दिन होटल में खाया, अब सामान का इन्तज़ाम कर लिया है। सुबह-शाम खाना बना लेता हूँ। चिन्ता मत करना। घर से निकला हूँ, तो बाहर होने की दिक्क़तों का सामना करना पड़ेगा। सोचना-वोचना मत—हालाँकि जानता हूँ; तुम सोचोगी। तब भी तो सोचती थीं जब तीन साल से बेकार बैठा था।

तुम तो भगवान से शिकायत करती थी। पिताजी सोचते थे मैं कोशिश नही करता, या पड़े-पड़े काहिल हो गया। मैं सोचता था जाने वह कौन-सा वक्त आएगा जब नौकरी मिलेगी!

अब तुम्हें भी खुश होना चाहिए, पिताजी को भी। मुझे खुश होना ही है।

यह खत सज्जो से पढवा लेना। उसी से जवाब दिलवा पाओगी। उसे समय मिले तो लिख देगी। पिताजी से मेरी नमस्ते कहना। तुम्हारा बेटा।

—शशि

जो कमरा मुझे मिला है वह ज़ीना चढकर दायीं तरफ़ है। इसी से सटा आँगन मे खुलता दरवाज़ा है। मकान-मालिक डॉक्टर असर्फीलाल का परिवार आँगन को घेरे हुए कमरों में रहता है। असर्फीलाल पशुओं के डॉक्टर हैं। दो लड़कियाँ, एक बेटा और पत्नी।

पहले हील-हवाला किया कमरा देने में। विश्वास दिलाया, मैं शरीफ़

लड़का हूँ। वचन दिया, अगर आपको या आपके परिवार के किसी सदस्य को शिकायत होगी तो फौरन कमरा खाली कर दूंगा। हाँ, दूसरी जगह ढूँढ सकूं, इतनी मोहलत चाहूँगा।

असर्फीलाल अच्छे स्वभाव के आदमी हैं। दो महीने का पेशगी किराया लिया, कमरा दे दिया। यह पेशगी उनके पास बनी रहेगी, महीनेवार किराया उन्हें दस तारीख तक मिलते रहना चाहिये, ऐसा उन्होंने मौखिक रूप से कहा था। यह शर्त भी थी कि किरायानामा नहीं लिखा जायेगा। किराया-प्राप्ति की किसी तरह की रसीद नहीं दी जायेगी।

मुझे तो कमरा लेना था। उनकी हर शर्त मानना जरूरी था।

शर्त के मुताबिक अपने को शरीफ साबित करना था। उसका सीधा-सा तरीका था—अपने से मतलब रखूं। वही किया। काफी दिन यही नहीं जान सका, दरवाज़े से जुड़े आँगन के चारों तरफ के कमरों में कुल कितने सदस्य रहते हैं। अगर ऊपर से पाँच सीढ़ी नीचे (जिन्हें मैंने बाथरूम जाते यूँही गिन लिया था) स्थित बाथरूम-कम-लेट्रिन में आते मैंने सदस्यों को हल्की झाँई की तरह देखा, तो वह देखना नहीं था। मैं करीब-करीब यही जतलाता कि मुझे क्या मतलब!

वैसे यह अस्वाभाविक स्थिति थी जिसे मैं अपने को गम्भीर जतलाने के लिए कोशिश करके अपना रहा था।

असर्फीलाल की पत्नी ने एक दिन मुझसे पूछा—कहाँ के हो? मैंने जब अपने कस्बे का नाम बताया, तब उन्होंने पूछा—कब से इस शहर में हो? वह भी बताया कि आए हुए अट्ठारह-उन्नीस दिन हुए हैं। तो उन्होंने यह भी जान लिया कि मैं किसी और किराये के मकान में नहीं रहा हूँ। उनका कमरा पहली बार लिया है।

फिर उन्होंने टुकड़ों-टुकड़ों में मुझसे मेरे परिवार की सारी सूचनाएँ ले ली। अपने परिवार के बारे में भी बताया।

डॉ०असर्फीलाल उन्हें गायत्री के नाम से पुकारते थे। बाकी बच्चे उन्हें मम्मी कहते थे।

उन्हें ज्यादा बातूनी नहीं कहा जा सकता—जैसी कुछ औरतें हद से ज्यादा होती हैं। उनके पूछने में ऐसा लगता था जैसे वह अपने बच्चों को

अपनत्व देती हैं, वैसा ही मुझे देना चाह रही हैं, या मेरी संरक्षिका बनकर बोल रही हैं।

पशुओं के डॉक्टर असर्फीलाल को महीने-भर में पहचान नहीं सका वह कैसे आदमी हैं। मेरे सामने पड़ते, मैं नमस्ते करता, वह जवाब दे देते। ज्यादा हुआ तो पूछ लेते—कैसे हो? या, कोई तकलीफ़ तो नहीं है? दोनों सवालों के जवाब मेरी तरफ से भी औपचारिक होते। इतना पता लगता था कि वह खाऊँ-फाड़ूँ आदमी नहीं थे। बाजे होते है, जैसे मेरे पिताजी। घर में हों तो डाट-डपट, काँय-काँय करना। माँ से, मुझ से, सज्जो से। चाहते हैं हम हाजरी बजाने को तैयार रहें।

असर्फीलाल को जोर से चिल्लाते नहीं सुना। प्रकृति ने वैसे भी फूला-फूला मुँह दिया, सो लगे सूजे-सूजे है किसी बात पर। घर में से कभी खुलकर ठहाके की आवाज नहीं आई।

गायत्री जी को पूछ-ताछ, और उनकी दी हुई सूचना से दो परिवारों का गणित यूँ फैलता है—पिताजी, मेरी माँ, मैं, सज्जो। असर्फीलाल, उनकी पत्नी गायत्री, बड़ी बेटी जत्ती, छोटी रत्ती, बेटा अनुपम।

स्वाभाविक सवाल उठ सकता है—अपना परिवार और मालिक-मकान का परिवार सिर्फ़ यही ताल-मेल क्यों?

मैं उत्तर बचा रहा हूँ। दूसरी मानना मेरी है, उसे लिख दूँ। मेरे सिर्फ एक बहिन सज्जो नहीं है। मुझसे खुद से बड़ी तीन और हैं। उनकी शादी बर्षों पहले हो गई। अपना परिवार सम्भाले उसी के फंदे-फाँस में उलझी हैं। लगभग कटाव है। इसलिये फिलहाल मेरे परिवार के गणित में शामिल नहीं हैं। कल सज्जो ब्याही गई, तो वह भी अलग हो जायेगी—गणित से बाहर।

डॉ० असर्फीलाल के परिवार में और भी उनके बेटे या बेटी हो सकते हैं। अभी मेरी जानकारी में नहीं हैं।

बात यह है कि पहले के गणित में अक्सर यह होता, सार्थक रिश्ते-नाते में जितने हैं, यहाँ तक कि बहिन-बेटियों के बच्चे-कच्चे, उन सबको शामिल करते थे। कोई मर जाये, तभी गिनती में छूटता था। अब अपने-आप इकाई छोटी होती जाती है। यह व्यावहारिक गणित है [illegible]

नया शहर है, नयी नौकरी। मैं कोशिश कर रहा हूँ कि अपने लिए धीरे-धीरे इसे खोलूं। अकेला हूँ, इसलिये घूम सकता हूँ। दूसरी भाषा में, आवारापन भी अपना सकता हूँ। लेकिन मेरा अपना स्वभाव बड़ा इकलखुरे किस्म का है। इतना था नही, तीन साल की बेकारी ने इसे बढ़ा दिया। पहले दोस्त बनाने में जरा-सी झिझक नही होती थी। उन्ही की मंडली बनाये, खिलदड़ापना करता रहता था। धीरे-धीरे बदलाव आता गया। सोचूं, तो यह बढा तब से जब से मुझे यह अहसास कराया गया कि दोस्तो मे मजे उडाने का वक्त गया। मुझे नौकरी तलाश करनी चाहिये। सीगे से लगना चाहिये। पिता की कमाई पर जेबखर्ची चलाने की उम्र बीत चुकी है।

नौकरी रखी हुई चीज नहीं थी कि उठा लेता। जेबखर्ची लेते हिचक पैदा होने लगी थी। जी उखडने लगा था दोस्तो से। फालतू वक्त भी बेकार खराब होता लगने लगा था। कुछ पिताजी की टोका-टाकी, कुछ मन की उखाड। घर मे ज्यादा रहने लगा। मां पूछ लेती थी, उनसे हिलकाव अधिक हो गया।

दूसरा अनुभव यहां हुआ। मैंने तो किराये की मौखिक शर्तों के मुताबिक अपने पर अलगाव लागू कर लिया था, पर मकान-मालकिन गायत्री जी ने पहल करके तोडा। अच्छा लगा। यह आन्तरिक सहानुभूति पकी हुई मांओ से ही मिलती है।

मैंने सायास चाहा कि दफ्तर में मिलनसारिता अपनाऊँ, लेकिन अभी कामयाब नही हुआ हूँ। कुछ स्वभाव मे हिचकिचाहट, कुछ दूसरी वजहें। जैसे, लोग अपनी यार-मंडली छोटी और सीमित रखना चाहते है। कुछ पहले मे होने की हेकड़ी मे रहते है, कुछ काम से काम रखना चाहते हैं, बाकी छिटकापन अपनाये रहते हैं। लड़कियां अपने हिसाब से जिनको ठीक समझती है, उनसे बोलती हैं।

मैंने फिलहाल यही तरीका रखा है—धीरे-धीरे माहौल मे शामिल होने का। इसलिये शाम को दफ्तर से किसी तरफ अकेला निकल जाता हूँ। कभी जी किया तो पार्क मे बैठ जाता हूँ। किसी रेस्त्रां मे चला जाता हूँ। या यूँही बाजार की रंगत देखता फिरता हूँ।

न हो, तब भी भारी चाल। सामने वाला फेंक देता है पत्ती गड्डी में। मैं भी कभी तो हामी भर देता हूँ, कभी घुप्पल पर घुप्पल मार देता हूँ। वह अपनी खासियत को खोलता हुआ हँसता है।

इस तरह की बातें अनुपम करता है। खुले दिल का है। मस्ती की उम्र है। मेरी तरह उसे अभी यह चिन्ता नहीं है कि खर्च तनख्वाह के मुताबिक चलाना है। जितने दिन बेफ़िक्री में रह सके अच्छा है।

महीने बढे है तो स्थितियाँ बदली हैं। इसी मोहल्ले में पुस्तकालय-वाचनालय है। यूँ किराये पर पत्रिकाएँ और किताब देनेवाली कई दूकानें हैं—चलती भी खूब हैं। अनाप-शनाप फिल्मी पत्रिकाएँ, सच्ची कहानियाँ, अपराध कहानियाँ और सस्ते साहित्य के जासूसी या रोमांटिक उपन्यास, चित्र-कथामाला एवं कॉमिक्स।

घर-घर में घुस गई हैं। बच्चे पढते हैं; लड़के पढ़ते हैं, बड़े पढते हैं। छोटी उम्र की लड़कियो के जरिये बड़ी बहिनें और माँएँ भी किराये पर मँगाती हैं।

मैंने इन्हें न पढने की कसम नहीं खा रखी है, लेकिन पुस्तकालय की सदस्यता खास तौर से ले ली। नये आदमी को सदस्य बनने के लिए किसी ऐसे व्यक्ति की गवाही की जरूरत होती थी, जिसे पुस्तकालय-इन्चार्ज जानता हो। और तो कौन मिलता, असर्फीलाल जी के हस्ताक्षर करवाए।

उन्होंने पूछा—पढने का भी शौक है?

मैंने कहा—जी।

किराये की दूकान वाली किताबें नहीं पढते?

जी, कभी-कभी।

सुना है यह पुस्तकालय किताबों के लिहाज से रिच है।

जी, विषय का वैविध्य काफ़ी है।

क्या? वैविध्य! इसका क्या मतलब है?

अलग-अलग सबजेक्ट्स की किताबें।

साइंस की तो हर्गिज़ नहीं होंगी। और हमारे पशुओं से सम्बन्धित तो हो ही नहीं सकती। क्या जवाब देता सिवाय 'नहीं' के ?

खैर, उन्होंने दस्तखत कर दिये। हमारे यहाँ तो किरायेवाली किताब आती हैं। रत्ती और अनुपम बहुत पढते है। मैं जानता हूँ जत्ती और बूढे होने को आई गायत्री भी पढती हैं। क्या गिरावट है! अब यही रह गया है पढने को—छूत की बीमारी। मना करो तो समझ मे नही आता। यह देश कहाँ जा रहा है ?

इसका भी क्या जवाब देता ? वह चले गये। मुझे ऐसा महसूस होता है कि हर एक की जबान पर 'देश' तकिया कलाम की तरह है, पर शायद ही कोई सोचता हो 'देश' है क्या ? देश तो वही जा रहा है जिधर उसे हम ले जा रहे हैं। हम अपने से छूटते नही हैं, पर रोज़ कम-से-कम चार-पाँच वार देश की चिंता कर लेते हैं। परदेश में होनेवाली घटनाओ को बहस का नुक्ता बनाते है।

मैं पुस्तकालय से या तो साहित्य की किताबें लाता हूँ या जो पिछले सालों में अखबार के संवाददाताओं ने राजनीतिक लोगों पर अग्रेज़ी किताब लिखी थी, उन्हें।

हाँ, जब थका हुआ होता हूँ, या अकेलापन अनुभव करता हूँ, तब हल्की-फुल्की किताब किराये पर ले आता हूँ।

अखबार और पत्रिकाओं के लिए पैसा निकाल नही सकता इसलिये वाचनालय मे जाकर पढ लेता हूँ। समय भी कट जाता है, ऊब और थकान भी हट जाती है।

दफ्तर में भी अकेलेपन की स्थिति टूटी है। नरेश कुमार अरोडा से निकटता बढी है। वही पहला शख्स था जिसने चलाकर परिचय लिया।

यार, बडे अलग-थलग रहते हो। उसने पहले दिन इसी भाषा में मुझसे बात शुरू की।

मेरा सटपटाना लाज़िम था। अचानक जवाब नही बन पड़ा।

दूसरा वाक्य ठोका—यहाँ के नही हो शायद।

हाँ, इस शहर का नहीं। मैंने जवाब दिया।

मैं समझ रहा था। लेकिन तुम मुझे अनोखे लगे। उसने टिप्पणी की।

क्यो ? मैंने उसे देखा।

इतने दिन हो गये तुमने चुप्पी में निकाल दिये। मेल-जोल तो लोग तुरत-फुरत बनाते हैं। झेंपू हो !

गुस्सा आया कि सरासर हमला कर रहा है। अपने-आप छूट ले रहा है।

सिगरेट पियो। उसने पैकेट निकाला। वास्तव मे उसे सिगरेट पीनी थी।

पीता नहीं। मैंने जवाब दिया।

ओह ! सात्विक हो। खैर, चलेगा। उसने सिगरेट जला ली।

इसके बाद हम नीचे उतरकर चाय पीने पहुँच गए। वहाँ नरेश ने ज्यादा बात की, मैंने कम। लेकिन वह पहला दोस्त बना। बाद मे वह मुझे समझ मे आने लगा, मैं उसे। उसके ज़रिये दो से और परिचय हुआ—अनिल और ज़ाकिर से। ज़ाकिर के नाम से चाहे कोई उसे मुसलमान जान ले, वरना पहनावे या बोली मे नही पता लगता था।

यूँ तो हम सारे हमउम्र एक-से ही हैं लेकिन वैसे व्यक्तिगत फर्क होता है, वह था।

नरेश जैसा पहले दिन लगा, दूसरे को छोटा बनाकर बोलने वाला, वैसा वह था नही। मैंने बाद मे उससे पहले दिन के प्रभाव के बारे मे स्पष्ट कहा, तो वह हँसा।

नही-नही, ऐसी बात नही थी। मैं ताज्जुब मे था तुम ऐसे कैसे हो। मैं यह भी जान गया था, तुम बढ़कर अपना रुतबा झाडनेवालो में से नही हो।

चार साज़ों पर कैसी भी एक धुन बजे उनकी वास्तविक आवाज़ें हमे उनकी पहचान देती हैं। नरेश बड़ा खुला और जैसा महसूस करता है, फौरन कह देता है। अनिल—चाचा इस कम्पनी मे अच्छी जगह पर हैं, इसलिये वह अक्सर अपना प्रभाव जमाने के लिए उनका जिक्र करता है। नरेश उसे उतारने में देर नही लगाता।

यार तू ठहरा अफसरी परिवार का। जब अफसर हो जाये तो आ जाना अपनी जात पर। अभी खामख्वाह हम पर क्यों रौब गांठता है? तू कन्वेंटी आदत को परे रखा कर।

कन्वेंटी आदत के मतलब अंग्रेज़ी ज़्यादा झाड़ना। उच्चवर्गीय नज़ाकत और दिखावे में तारीफ समझना। कपड़ों को ज़्यादा तरजीह देना। नखरे से बोलना। नरेश दफ्तर की ऐसी लड़कियों के नाम इसी सिलसिले में गिना देता है जो अपने को खुदा समझती हैं। एक-दो की शक्ल और पहनावे की भी लगे हाथ छीछालेदर कर देता है।

ज़ाकिर के बारे में मेरी अपनी समझ यह है कि वह खुलकर भी पूरी तरह नहीं खुलता। ऐसा लगता है कहीं बहुत गहरे में उसे यह अहसास बना रहता है कि वह मुस्लिम है। वह बहुत-से ऐसे विषयों पर बातचीत करते वक्त सतर्कता ले लेता है जहाँ हमें हिचक नहीं होती। मसलन हम पाकिस्तान के क्रिकेट खिलाड़ियों की जब खुलकर तारीफ करते हों, वह दबी तौर पर करेगा। हम खाड़ी के देशों की सम्पन्नता और उनकी मज़हबी संकीर्णता की बात करेंगे, वह अपनी राय दबाव के साथ ज़ाहिर करेगा। साफ लगता है वह अपने बारे में ऐसी राय नहीं बनने देना चाहता कि वह मुसलमानों का पक्षपाती है।

अन्दरवाला मामला होता भी ख़तरे का क्षेत्र है। हम सब कितना हिस्सा छिपा रखते हैं, कितना दूसरों को बाँटते हैं, यह चौकन्ना हिसाब कैंसर की तरह चलता रहता है। कोई कितना भी अपना हो हम उसे थोड़ा-कतरा हुआ देते हैं।

मैंने नरेश को यह नहीं बताया कि तीन साल की बेकारी ने मुझे कहाँ-कहाँ मोच दी। मैंने उसे यह भी नहीं बताया कि आज भी कितना पढ़ता हूँ और कि अक्सर लिखता भी हूँ। क्या मैं यह बताता कि वकीली मेरा शुरू से लक्ष्य नहीं था? फिर अंग्रेज़ी साहित्य में क्यों झक मराई थी? एल० एल० बी० क्यों किया था? लेकिन चाहना और पाना दो अलग स्थितियाँ हैं। बहुत-सी शक्तियाँ एक छोटी परिस्थिति को इतनी तरफ से और इतनी तहों पर छेड़ती हैं कि शख्स को फँसा लेती हैं। निश्चित रूप

से मैंने अपनी जो छवि अपने लिए गढ़ी थी, वह ऐसी नहीं थी। अभी भी नहीं है।

कमरा जितना पराया लगता था वह धीरे-धीरे अपना लगने लगा है। जो नियन्त्रण मैंने इस डर से लिया था कि कहीं गायत्री जी और असर्फीलाल जी मुझे ऐसा-वैसा न समझ बैठें, वह कुछ-कुछ सामान्य होने लगा है। डॉक्टर साहब की तो वही गुम-सुम स्थिति है, दूसरे सदस्य मेल में आने लगे हैं। अनुपम के साथ कभी-कभी पिक्चर जाना हो जाता है। मैं बाज़ार जा रहा होऊँ तो गायत्री जी घर के सौदे-सुल्फ के लिए भी कह देती हैं। कमरों में न सही, आँगन तक पहुँच हो गई है। जत्ती और रत्ती भी बोलने लगी हैं। रत्ती बड़ी चंचल है। जत्ती उसके मुका-बले में बहुत कम बोलती है। जत्ती घर का काम खूब करती है। रत्ती की शिकायत गायत्री जी के मुंह पर रहती है। वह नाम के अनुकूल इन शिकायतों की रत्ती-भर परवाह नहीं करती। रत्ती अनुपम से दो साल छोटी है ऐसा पता लगा। जत्ती अनुपम से पाँच साल बड़ी है, अनुपम ने बताया।

पशु-चिकित्सक डॉक्टर असर्फीलाल की गृहस्थी रहन-सहन की बुना-वट में थोड़ा-थोड़ी समझ में आने लगी है। काफी सुविधाएँ हैं। फ्रिज है, टेलीविजन है, गैस है, सजा हुआ ड्राइंगरूम भी है। उनका अपना अलग कमरा है। कपड़ों में फैशन और हवा के साथ अनुकूलता है। लेकिन पूजा-पाठ भी है। खाने में सेहत की चीज़ों पर ज्यादा ज़ोर है। गायत्री जी और जत्ती को मैंने धूपबत्ती करते, आरती गाते देखा है। अनुपम और रत्ती भी खड़े होते हैं, पर आँख खोलकर। एक बार मुझे भी खड़ा होना पड़ा। मेरी तो बाकायदा आँख मुंदी।

आरती के ज़रिये एक बात और पता लगी। घर का घर सुरीला है। गायत्री जी की इस उम्र में भी पैंठने वाली आवाज है। जत्ती और रत्ती में बीस-उन्नीस का फर्क है। अनुपम ऐसे गा रहा था जैसे फिल्मी गीत गा रहा हो। आरती मूल में होते हुए भी फिल्मी तर्ज पर थी।

जिस शहर में आठ सिनेमा हॉल हों वह आकार में कितना बड़ा और क्षेत्रफल में कितना फैला होगा इसका अन्दाज़ा लगाना मुश्किल नहीं है।

यहाँ का औद्योगिक क्षेत्र विभिन्न तरह की चीजों का उत्पादन करने वाले कारखानों से गमगमाता होगा। और छोटे-छोटे उद्योग—लघु या घरेलू उद्योग तो गली-कूचों में चप-चप होंगे। शहर को जानने की जिज्ञासा में छुट्टियों के दिन मैं चाहे जिस तरफ मुँह उठाकर निकला हूँ। आठ-आठ, दस दस किलोमीटर बस के ज़रिये गया हूँ। यह कार्यक्रम इसलिए भी बनाना पड़ा कि छुट्टी का दिन पहाड़-सा बड़ा लगता था। लेकिन बात यही है, जितना देखो ऐसा लगता है कि कोई व्यस्तता स्वचालित है। लोग खुद-ब-खुद उस व्यस्तता में अपने सूराख करके बिंध गये हैं—हैं तो वे हँसते-चमकते मोती, लेकिन उनकी आब पर अजीब-सी छाया है।

बाज़ार हैं तो बाज़ार की तरह गरम। बेचने वालों की कतारों में दूकानें। उनके ऊपर दूकानें। बड़ी शो-केसों वाली दूकानें। खुच्चे-कोने की छोटी दूकानें। हर किस्म का माल और किस्मों में भी उपकिस्म, तरह-तरह के ब्रांड और नमूने। जितना लदा-फँदा माल, उतनी संख्या में खरीदार। न बेचने का सिलसिला ठहरता है, न खरीदारी का।

मंडियों में शोर-शराबे का माहौल। ट्रक-पर-ट्रक। व्यापारी और सौदा बैठाने वाले दलाल। थोक में दीखने वाली गाँठें, पीपे, ढेर-का-ढेर सामान। और मेरे जैसा कल्पनावाला सोचता है कि उस शहर के आदमी का पेट है या कि कोई पाताल-कुआँ? जो भी आये खप्प! जो भी आये खप्प!

सवारियाँ है कि दौड़ती चली जाती हैं—बसें, आटो, ताँगे, साइकिलें, स्कूटर, मोटर साइकिल, निजी कारें, मेटाडोर।

सवारियों ने जैसे शहर को रौंद रखा है और काली सड़कों के जाल ने छोटे आकार की मछलियों से लेकर स्थूल देह की गूदेदार मछलियों को फँसा रखा है। लेकिन यह जाल पानी में डूबा है, इसलिए मछलियाँ पानी चुलबुलाती तैरती रहती हैं।

जानकारी के बावजूद चाहे गलियों-कूचों के मुहल्ले हों या शान आभिजात्य कॉलोनियाँ, कच्ची बस्तियाँ हों या सरकार द्वारा ठेकों पर बनाये गये श्रेणियों के मुताबिक ऋण पर दिये जाने वाले हवारहा ए०, बी०

सी०, डी०, ई०-टाइप क्वार्टर्स या फ्लैट, सब सलीके के साथ गडमड लगते हैं—अथाह।

मैं इतना सबूत दे सकता हूँ कि शहर काफी खदोड़ लिया है। किसी तरह की बस्ती देखी जाय, एक-सा वर्ग दीखता है। एक-सा रहन-सहन, तकरीबन समान पेशे वाला दर्जा।

मैं नाटकों में गया हूँ, नृत्य के कार्यक्रमों में और दलों की राजनीतिक सभाओं में। अपने शौक, अपनी महत्त्वाकांक्षा, अपनी लतों के साथ लोग घेराबद हैं, जैसे उनकी दुनिया उनकी है, और उन्हीं के लिए है। नारे देते जुलूस और भूख-हड़ताल के ज़रिये अपना विरोध दिखाते लोग, अक्सर नज़र आते हैं।

इस शहर का नक्शा मैंने नहीं देखा—पर्यटक के लिए दूसरी इमारतें, मन्दिर-मस्जिद वगैरह हैं—पर सिरे कहीं-न-कहीं तो होंगे।

इतना सब इन महीनों में देख लिया। अब घूमने से ऊबन होने लगी। इधर नरेश, अनिल, ज़ाकिर के साथ चौगड्डा बन गया है। छुट्टी के दिन उनके साथ भी प्रोग्राम बनने लगे। जब दिनचर्या स्थायी क्रमवारता ले लेती है तब उछलबछेड़ा मूड उससे समझौता बैठा लेता है। मैं करीब-करीब दूसरों की तरह तय ट्रैक अपनाता जा रहा हूँ। इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि ट्रैक मुझे पकड़ रहा है।

सज्जो ने मेरे खत का जवाब नहीं दिया। माँ कहती रहती होगी लेकिन भला वह क्यों परवाह करेगी? माँ अगर लिखना जानती होती तो अब तक उसके कम-से-कम चार खत आ जाते। पिताजी से कहती होंगी तो वह टाल देते होंगे। मैं समझ नहीं पाता कि पिताजी मेरे प्रति ऐसे क्यों हैं। सज्जो को चाहते नहीं थकते। उसे सिर पर चढ़ा रखा है। लाड की वजह से सज्जो ने लगाने-बुझाने की आदत ले ली है। वह अपना महत्त्व बनाये रखने के लिए पिताजी का सहारा लेती है। वह मुझे डाँट पड़वा देती थी। उसकी शिकायत पर पिताजी माँ को झिड़क देते थे। वह मन की करवाने के लिए पिताजी से झूठ भी बोल सकती थी।

उसकी इस आदत से मैं परेशान था। माँ उसे समझाती कि शशि

तेरा बड़ा भाई है, उसकी इज्जत किया कर, लेकिन वह इस कान से सुनती दूसरे से निकाल देती। एक तरह से पिताजी की शह पर वह मुझे गिनती नहीं थी। मैं भी मौका पाकर उसे फटकारता, लेकिन तब वह रोकर या ज़बानदराज़ी कर कांड-सा खड़ा कर देती। माँ मेरा पक्ष लेती हुई झल्लाहट में कह बैठती—जाने किस दिन इस घर का पीछा छोड़ेगी!

जहाँ तक पीछा छोड़ने की बात थी, वह शादी होने से हो सकता था। पर यह इतना आसान नहीं था।

पिताजी बदमिज़ाजी चाहे जितनी दिखा लें लेकिन व्यावहारिक कभी नहीं रहे। वह तो किन्हीं रिश्तेदारों ने दो बड़ी बहनों की शादी तय करवा दी थी सो हो गई, वरना इनके बस का नहीं था।

मुझे दोनों स्थितियाँ बुरी लगती हैं। सज्जो की शादी की न तो बात चलाते हैं न उसे कॉलेज भेजते हैं। तीसरी स्थिति यह है कि पिताजी माँ को नहीं गिनते। माँ ज्यादातर उनके चिड़चिड़ेपन को सहती रहती। लेकिन जब वह तेज पड़कर नाराज़ होती तो भीगी बिल्ली बन जाते। माँ बहुत कम वैसा करती।

दरअसल इन्हीं कारणों से मेरा दिल फट गया था। जिस दिन नौकरी पर बुलाने का पत्र आया मुझे उस दिन मुक्ति पाने की खुशी हुई सो हुई ज़बरदस्त आश्चर्य हुआ। आज के इस रिश्वतखोरी, सिफारिशी और पक्षपाती वक्त में कोई बिना इन तीनों के सहारे के नौकरी पा जाये यह आश्चर्य की बात नहीं है? मैंने किसी से भी कहा तो उसने मुझ पर विश्वास करने के बजाय अविश्वास किया। बल्कि साफ टिप्पणी कसी—बनता है! झूठी डींग हाँकता है! मैंने कहना बंद कर दिया।

मुझे माँ पर तरस आता है कि बेचारी ज़िन्दगी-भर परिवार के लिए खटती-मरती रही लेकिन पिताजी ने उसको हक की इज्जत नहीं दी। प्यार भी नहीं दिया, जैसे वह गले पड़े होकर आई थी। यह पुरुष-सत्ता का आपत्तिजनक इस्तेमाल था। पर यह तो अस्सी प्रतिशत घरों में मिलेगा।

कितनी बार माँ पर ज्यादती देखकर मैं अपने पर काबू नहीं रख सका। मैंने पिताजी से ज़बानदराज़ी कर ली। उसका नतीजा विरुद्ध

हुआ। पिताजी ने उपेक्षा अपना ली या मुझे छोटा करने के लिए कमाई पर पलने की ताना-कशी करने लगे।

वहरहाल मैंने उस तनाव-भरे माहौल से छुट्टी पा ली। इच्छा होती है कि अच्छी तरह बस जाऊँ तो माँ को अपने पास ले आऊँ। यह भी जानता हूँ कि पहले तो पिताजी हीले-हवाले करेंगे, फिर माँ सज्जो के उत्तर-दायित्व की बात करके मेरे प्रस्ताव को गिरा देगी। हाँ, दिलासा देगी कि मैं तेरे पास जरूर आऊँगी।

पूरी स्थिति को नजर में रखते हुए मुझे लगता है मुझे घर के प्रति अतिरिक्त भावुकता को तराश लेना चाहिये। काफी अरसे तक अकेला रहना है, सो रहना है। अकेले की जिन्दगी क्या जिन्दगी नहीं होती ?

अनिल का जन्म-दिन है। उसने कल नरेश को, मुझे और जाकिर को निमंत्रण दिया। मेरी राय यह थी कि अनिल हम दोस्तों की पार्टी किसी रेस्त्राँ में करे तो अच्छा रहे। वास्तविकता यह थी कि मैं उसके घर जाने में सकोच कर रहा था। अनिल ने यह बताया था जन्म-दिन उसका है लेकिन उसके पापा और मम्मी इस अवसर को अपने लिए भी इस्तेमाल करते हैं। पापा अपने अफसर दोस्तों को बुलाते हैं, मम्मी अपनी सहेलियों को। एक बहाना जश्न मनाने का मिलता है।

साफ़ था कि इस तरह की सम्पन्न सोसायटी में जाने का मेरा पहला मौका था। मैं तौर-तरीकों से अपरिचित था इसलिए साहस का टूटना मुनासिब था। नरेश और जाकिर के लिए ऐसी समस्या नहीं थी।

मेरी राय अस्वीकृत हुई। एक बचाव मुझे सूझा।

मैंने नरेश से कहा—कोई-सी जगह तय कर ली जाय, वहाँ तुम और जाकिर आ जाओ, वहीं से साथ चले चलेंगे।

अनिल ने टोका—इस तरह से जाकिर को बहुत चक्कर पड़ेगा। उसे उल्टा आना पड़ेगा।

मैं तुम्हारे बंगले को नहीं ढूँढ़ पाया तब ? यह भी मेरा बहाना था, वरना इतना गँवार तो नहीं था कि पता होते हुए बंगला नहीं ढूढ पाता।

तय हुआ कि जाकिर भी आ जायेगा। शहर में इधर-उधर की थोड़ी

अधिक घुमाई वैसे भी हो जाती है, एकाध रुपया ज्यादा किराये की कौन परवाह करता है !

घर आया था तो इस पसोपेश में पड गया—कपडे कौन-से पहनने होंगे ? यह नही पूछा नरेश से कि क्या वह अनिल के लिए कोई उपहार ले जायेगा ? मुझे दो निष्कर्ष कुरेद रहे हैं—लिख ही दूं।

आदमी अगर साधारण दर्जे का हो तो नाहक का भय और छोटा न माना जाये इसका अतिरिक्त भय सताता है। उदाहरण के तौर पर मैं अवसर के लिए अनुकूल ड्रेस के लिए सचेत हो उठा। क्यों ? क्या मेरे पास स्तर के कपडे नही हैं ? हैं। जैसे कपडे अनिल या नरेश, या जाकिर, या दफ्तर के दूसरे लोग पहनते हैं कम-अज़-कम मेरे पास भी उसी कीमत के हैं। और मेरा खयाल है गिनती भी बराबर के क़रीब होगी। लेकिन इस तरह की चेतना और आतंक होता स्तर-भेद या वर्ग-भेद के कारण है। वर्ग के सस्कार गहरी जड लिये होते हैं।

दूसरा अनुभव कुछ जेबकतरे खर्चों का है। आप जानिये मत लेकिन सवारी का, दोस्तों के साथ बैठकर कही चाय पीने का, सिगरेट पीने का और सिनेमा देखने का खर्च जेब के सूराख से खिसकता रहता है। हाथ तभी खिचता है जब तगी आपको खीचती है। मरे जेबकतरे खर्च मे पत्रिकाएँ खरीदने का खर्च शुरू हो गया है।

शाम छः बजे मैं अपने लिहाज से जँच-जँचाकर निकलने को हुआ। मैं सूचना देने गायत्री जी के पास पहुँचा कि रात मे देर से आ सकता हूँ। नीचे का दरवाजा बन्द नही करें।

अनुपम ने फब्ती फेंकी—क्या बात है भाई साहब, आज तो हीरो लग रहे हैं !

मैं समझ गया डॉक्टर असर्फीलाल जो नही हैं, वरना यह भाषा नही आती। गायत्री जी उसे टोकती कि रत्ती की तरफ से टिप्पणी आई—आज तो स्प्रे की महक है !

रत्तो का प्रथम चौका था मेरी तरफ़। मैं सच मे झेंप गया। उत्तर बना नही तो खिसियानी मुस्कराहट लाकर बाहर हो लिया।

कैसी बदतमीज है ! मैंने जीना उतरते-उतरते सोचा कि

जी इसे डाँट लगा दें तो बढ़िया रहे। मुँह खुला सो खुला। इसका कुछ नही बिगड़ेगा, मुझे कतराना पड़ेगा।

साढ़े छ बजे तै हुई जगह पहुँच गया। जाकिर मौजूद था, नरेश नदारद।

महक रहे हो भाई जान ! ज़ाकिर ने कहा।

तुम भी तो। मैंने जवाब दिया। रत्ती ने आकस्मिक ताना कसा था। मैं खिन्न आ गया था। पर अब मैं तैयार था। बस मे आते-आते हर सम्भव टिप्पणी के लिए मानसिक अभ्यास कर लिया था।

नरेश भाई जान किस चक्कर मे पड गये ? आये नही। जाकिर ने पहले लहजे मे कहा।

आज लखनवी अन्दाज कैसे हावी है ? मैंने ज़ाकिर से हँसकर कहा। *वह समझ गया, मैंने कहाँ नश्तर दिया। यह भी अभ्यास की जाँच थी। उसी पल मेरे दिमाग मे आया—यह कैसा छिछोरपन !*

आदमी बात-बात मे कितनी जल्दी सायासित ओछा हो जाता है इस पर ध्यान कम जाता है।

अब हम नरेश के आने की दिशा मे देख रहे थे। इंतजार कुछ देर तो सहा जा सकता है, उसके बाद खीज भरने लगती है। पन्द्रह मिनट हो गये उसका कोई निशान नही था।

थक गये यार ! जाकिर ने ऊबकर कहा।

कही जा भी तो नही सकते हटकर। करीब-करीब मैं भी खीझ रहा था।

सुना है, तुम्हारी सीट बदली जा रही है।

कहाँ ? मुझे तो नही पता। मैं समझ गया था जाकिर दफ्तर के संदर्भ मे कह रहा है।

हमे पता है। तुम चमन-सेक्शन मे जा रहे हो।

अभिप्राय मैं समझ गया, लेकिन निश्चित करने के लिए अनजान बना—तुम्हारी कोड भाषा पल्ले नहीं पडी।

रहने दे यार, भोला भट्ट बनता है। समझता नही कि छोकरियों के बीच जा रहा है। सम्भलकर रहना बेटा, हवा बखेर देंगी। चरपरी हैं।

मेरे अन्दर से हौल उठा—लेकिन ऊपर से सम्भला रहा। लडकियाँ तो कई सेक्शन मे हैं। तुम्हारे साथ भी तो नीलम और आइरीना हैं।

यह फ्रेंच-कट दाढ़ी देखी है—झुकी मूछें। उन्ही के लिए हैं। फिर हम तो चिकने बट्टे हैं। वह मजाक उड़ाने में अपने को तीरंदाज समझती हैं तो हम भी ऐसे जवाब टिकाते हैं, बोलती ही बद हो जाती है। ख़याल यह है कि तुम्हारा क्या होगा। मिसेज डोगरा और मिस अवतरमानी कान का मैल निकालने वाली हैं।

होंगी। अपना क्या लेंगी ! मैंने लापरवाही से कहा। लेकिन अन्दर कसर बाकी नही थी। इन महीनो मे उडते जिक्र में नरेश की बदौलत कुछ के बारे में सुन लिया था। मन में सोच रहा था क्या जरूरत पड़ गई सीट बदलने की ?अभी एक टेबिल का काम समझ में आया था। फिर नया ! पर काम को लेकर डर हट चुका था।

वह आ रहे हैं परवरदिगार। जाकिर नरेश को देखकर बोला।

आज उर्दू छाई है या मुसलिम संस्कृति !

कभी-कभी होता है यार ! न चाहते हुए पता नही कैसे फूट पड़ती है। फिर काबू करो तो काबू नही होती।

नरेश नजदीक आ गया था—सॉरी, देर हो गई। लड़ाई और हो जाती।

क्या हुआ ? मैंने पूछा।

रास्ते में बता दूगा। बस को छोडो ऑटो कर लेते हैं। जल्दी पहुँच जायेंगे। उसने घडी देखी। उसकी देखा-देखी मेरी भी नजर अपनी घड़ी पर गई। जाकिर ने रूमाल निकालकर अपना मुँह पोछा जैसे इतनी देर खड़े-खड़े सडक की गर्द मुँह पर.पर्त लगा गई हो।

आगे बढकर ऑटो लिया और चल दिये। रास्ते में नरेश ने बताया बस-कंडक्टर और सवारी का झगडा हो गया। सवारी क्या- कॉलेज के तीन छोकरे थे। धौंस दिखाकर कह रहे थे, बैठने की जगह दो तब टिकट लेंगे। कडक्टर ने उतरने के लिए कहा, तो उतरे नही। कंडक्टर के मुँह से निकल गया—बस क्या तुम्हारे बाप की है ?जवाब मिला--क्या तुम्हारे बाप की है ? गाली-गलौज बढ़ी। कंडक्टर ने बस रोक ली। न वे उतरें, न वे बस चलने दें। सवारियाँ चिल्ला रही थीं, ड्राइवर तना बैठा था। जब ट्रैफिक पुलिस ने आकर तीनों को उतारा तब बस आगे बढ़ सकी।

बस न कंडक्टर के बाप की निकली, न उन नौजवानों के बाप की। बस निकली ट्रैफिक पुलिस के बाप की। जाकिर ने घटना पर टिप्पणी चस्पां की।

रास्ते में बहस का विषय मिल गया—आवागमन-साधन और पुलिस की भूमिका। खासी छीछालेदर की। नरेश आगे रहा क्योंकि ताजा-ताजा भुगते हुए था।

ऑटो मुख्य सडक को छोड़कर पथों को पार करता हुआ अनिल के बंगले के सामने रुक गया। पाँच-छः कारें थीं। ज्यादा स्कूटर थे।

मुझमें फिर भय उठा मध्यम वित्तीय संस्कार का। तुरत सभाला अपने को। लेकिन यह सम्भाल नरेश और जाकिर के साथ होने की आश्वस्तता से उकस पाई।

थक गया। देह से ज्यादा दिमाग थका है। पूरे दो घटे से ज्यादा कोई इस सतर्कता में रहे कि उससे ऐसी ग़लती न हो जो उसका मजाक बनवा दे, यह कम तनाव की स्थिति नहीं थी। तिस पर सारा माहौल बडा नकलची और दिखावटी था।

ग्यारह बज चुके। खाट पर लेटा हूँ। नींद के आसार दूर तक नहीं है। दिमाग थका हुआ होने के बावजूद चर्खी हो रहा है।

जाकिर ने दफ्तर में मेरे सेक्शन बदले जाने की सूचना सुना दी। उसी पर सोच चल दिया।

मैं खुद अपने पर ताज्जुब करता हूँ कि इतना ग्राही क्यों हूँ। उम्र सिर्फ अट्ठाइस साल की है। मेरी उम्र के युवक मस्ती और बेफिक्री से रहते हैं। मैं हूँ कि हर ज़रा-सी बात पर सोचता हूँ। खुशी हो तो खुलकर हँस नहीं पाता। दुःख हो तो उसे अन्दर-अन्दर घोंटता हूँ। घुटता रहता हूँ, फिर भी यह नहीं हो पाता कि किसी तरह उसे आया-गया कर दूं।

अनिल की जन्मदिन की पार्टी क्या थी खासी खिलवाड़ थी। सबके लिए गत्ते पर छपे ऊटपटाँग चेहरे थे। जैसे फिल्मों में होता है, वैसी नकल के नकाब औरतों तक ने लगा रखे थे। अनिल के सिर पर फुदनेदार टोपी थी। उसके डैडी और मम्मी भी दूसरे बूढ़ों के साथ भेष बनाए हुए थे। हर बूढ़ा अपने को जवान समझ रहा था। दफ्तर की सात साथिनें

मौजूद थी। नीलम, आइरीना, डोगरा, अवतरमानी, रंजीता को मैं पहचान सका। हैप्पी वर्थ डे गाया गया। फिर अंग्रेजी धुन के कैसेट पर उछल-कूद मची। शोर और शरीरतोड़ नाच। मैं आश्वस्त था कि उनमें से आधे से ज्यादा ऐसे होंगे जो महज कदम भरने के लिए सरक रहे थे। वरना बाद में अंग्रेजी के जो गीत बजे वह पल्ले पड़ने वाले नहीं थे। पार्टी में जहाँ ठंडा पेय था वहाँ व्हिस्की और स्कॉच भी चल रही थी।

जन्मदिन ही तो था, शादी तो नहीं थी। कार्यक्रम त्योहार बना हुआ था।

अजीब जारज मिलावट थी। पूजन भी हुआ। मम्मी ने बेटे का आरता उतारा, लम्बा टीका लगाया।

आखिर यह सब क्या था?—महज सम्पन्नता का प्रदर्शन। क्या झलकी? न अपनी संस्कृति न शुद्ध पश्चिमी। मुझे तो बहुरूपियापन लगा।

यह बुनियादी सवाल अक्सर मेरे दिमाग में उठता है कि आया परिस्थितियाँ हमें बदलती हैं या हम नकल में बदलाव लेते हैं, बिना किसी खास वजह के?

अभी कुछ साल पहले चली हवा नशे और गलीवपने से रहने की। मुक्त जीवन की।

यह मुक्त जीवन की इच्छा नहीं थी, स्वैर और नकारात्मक जीवन की स्वीकृति थी। उसके साथ विद्रोह का दर्शन जोड़ा गया। वह स्व-घाती विद्रोह किसके विरुद्ध था? पश्चिमी देशों की विकृत भोगवादी मानिकता से पलायन-भर था।

हेड के हेड़ युवक-युवती भारत और नेपाल तथा अन्य देशों में आये। शान्ति की तलाश का नाम लिया। रिश्ते के नाम उनके पास स्वच्छंद वासना थी। कमाई से अवकाश था।

यह छूत हमारे यहाँ फैशन के तौर पर अपनाई गई। मुझे पता है कि कॉलिज में ऐसे युवकों का वर्ग था, जिसने नशा अपनाया। ये ऐसे ही परिवार के युवा थे जैसे अनिल का परिवार। माँ-बाप ने जड़ उखाड़ी, बेटे तैरने लगे नशे में। बेटियाँ भी।

नतीजा क्या निकला ?

विदेश से आये हुए सुरक्षा-हीन युवक-युवतियों की गुमनाम मौतें। उनकी नकल में उस जीवन-पद्धति को अपनाने वाली युवा-शक्ति का विचलन।

ह्रास। नाकारा हो गये सैकड़ों युवक-युवतियाँ।

मैंने आंशिक तौर पर ऐसे नमूने के लड़कों को कॉलेज मे देखा था। बाकी अखबारो और पत्रिकाओ को पढ़कर जाना।

मैं अपने बारे मे एक तथ्य जानता हूँ। मैं कॉलेज मे रहा, या बेरोज-गारी भुगती। पिताजी की उपेक्षा सही या घरघुस्सू हो गया। निराशा में डूबा या बार-बार संघर्ष के लिए साहस बटोरा। मुझमे बेचैनी के साथ तलाश है कि हमसे क्या छूट गया जो न स्पष्ट दीखता है न अपने विकल्प का आभास देता है।

नींद ऐसे ऊहा-पोहो में उड़ती है, तो उड़े।

कई दिनो से देख रहा हूँ रत्ती अल्हड़पन के संकेत दे रही है। साफ़ लिखू तो वह यह जाहिर कर रही है कि मेरी तरफ आकर्षित है। मैंने आते-जाते उसकी आँखो को पढ़ा है। उसने बोलने की छूट ले ली है। शशि भाई साहब कहके सम्बोधित करती है। ऐसा लगता है कि बोलने का कारण न हो तब भी वह ढूंढकर निकालती है। गनीमत है कि सिर्फ चलते-फिरते छेड़ती है। चार-पाँच वाक्य बोले कि भाग ली। मन का चोर है जो छिपाव बनाये रखता है फिर भी अभिव्यक्त होता है। डर भी है किसी को शक न हो।

वह सत्रह-अट्ठारह की है पर चंचलता में और छोटी लगती है। मैंने जब से यह जाना कि वह आकर्षित है, अन्दर से डर उठा हूँ। हालाँकि वह देखने मे अच्छी लगती है लेकिन मुझे तो बड़ी अपरिपक्व और बच्ची लगती है। इतना अनौपचारिक नहीं हुआ हूँ कि उसे टोक दू—किधर बढ़ रही हो ? मेरे पास सबूत भी क्या है ! महज़ अन्दाजा है।

सोचता हूँ अगर गायत्री जी को, या असर्फीलाल जी को शक हो गया तो ? मैंने विश्वास दिलाया था ऐसा-वैसा लड़का नहीं हूँ। उस पर तो झिड़की पड़कर रह जायेगी—उनकी अपनी बेटी है—ठीकरा मुझ पर

फूटेगा। इत्मीनान से कह दिया जायेगा—कमरे की हमें जरूरत है, खाली कर दो!

मैं ऐसे किसी जोखम को लेने के लिए तैयार नहीं हूँ। अल्हड़ लड़की कब आपको खतरे में डाल दे पता नहीं लग सकता। आवेश और छिछलाहट अधिक, अपने पर काबू कम। डर तो मैं रहा था कहीं आपत्तिजनक हरकत न कर गुजरे। लेकिन उससे एक सीढ़ी नीचे की बात हुई।

मैं बैठा हूँ सट्ट।

दफ्तर से आया, कमरे का किवाड़ ज्योंही खोला एक लिफाफ़ा मिला। बाकायदा मोहर लगा।

मैंने समझा माँ का पत्र आया होगा।

लिफ़ाफ़ा लिये-लिये खाट पर आकर बैठ गया। उत्सुकता से खोला। शुरू का पढ़ते ही धक रह गया। रत्ती का था। दरवाज़े की तरफ़ देखा कोई जीने से न गुज़र रहा हो। सिरहाने रखी किताब मे फौरन दबाया और खड़ा हो गया। कैसी लड़की है! परेशानी पैदा कर देगी। मैं वास्तव में घबरा उठा। कपड़े बदलने की बात भूलकर हालत ऐसी हो गई जैसे असर्फीलाल जी का माल किसी ने चोरी करके मेरे हाथ में थमा दिया हो। वह निश्चिन्त हो पर मेरे सामने समस्या हो कि उसे कहाँ छिपाऊँ? झल्लाहट भी आई।

मैंने दरवाज़ा बंद कर सिटकनी लगाई और लौटकर किताब में से पत्र निकाल लिया। लिखने को उसमें क्या था, वही प्यार और भावुकता। भाषा भी वैसी जैसी किराये के उपन्यासों में होती है। ऐसा लगा किसी भी वैसे उपन्यास की कोई सोलह वर्षीया नायिका पत्र लिख रही हो। मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि उपन्यास का पत्र नकल मारकर अपना कर लिया।

सोच रहा हूँ इस बला को फाड़कर चिंदी-चिंदी कर दूं। या मौका देखूं उसे लौटाने का। या फिलहाल इसे रख लूं और रत्ती को ताकीद दूं कि आगे ऐसा बचपना नहीं करे।

लेकिन कुछ न करते हुए भी अपराधी-सा महसूस कर रहा था।

खट! खट! खट!

किवाड पर खटखटाहट।

मैंने झटपट खत किताब में दबाया और किताब अलमारी मे रख दी।

खोलता हूँ।

किवाड खोले तो रत्ती सामने खडी थी।

बंद क्यो कर रखा था ? मैं नीचे जा रही थी। बाहर ताला लगा नही देखा।

यूही। मैं भी चालाकी खेल रहा था।

यूही तो नही। कोई बात जरूर है। वह मुझसे आँख मिलाती हुई बोली।

जहाँ जा रही थी, जाओ।

बाथरूम जा रही थी। वह मुस्कराई।

तुम्हारा दिमाग चल गया है। मैं काबू नही पा सका अपने पर।

क्या हुआ ? वह चचलता में थी और ऐसे अकडी हुई थी जैसे बड़ी हिम्मत का काम किया हो।

तुमने मुझे खत क्यो लिखा ? किसी के हाथ पड़ जाये तो ? मैं डपट पडा।

मम्मी को दे दो। उसने कहा, और हट गई। नीचे उतरकर बाथरूम में चली गई।

मैं दरवाज़े के बीच हकबकाया खडा रहा। थोडी-सी देर मे वह मेरे सामने से निकली। मैं रोकू कि वह दनदनाती हुई ऊपर चली गई।

मेरे पास कोई रास्ता नही रहा—न डाँटने का, न बुरा कहने का, न चेतावनी देने का।

हारकर अन्दर आ गया। दफ्तर के कपड़े बदले। थी पलों की घटना, लेकिन एक के ऊपर एक थी और आकस्मिक थी।

उसका ढीठपन था या दुस्साहस !

मैं अभी तक सामान्य नही हो पाया। प्रभाव को तितर-बितर करने के लिए चाय तैयार करने लगा।

आगे की सम्भावना सोचकर भय खाने लगा। हालांकि दफ्तर मे भी यही स्थिति बनी हुई है। श्रीमती डोगरा और मिस अवतरमानी के साथ

काम कर रहा हूँ, लेकिन वह सीधी समस्या नही है। काम का माहौल है, व्यक्तिगत बातें होती हैं, तो सीमित।

चाय तैयार हो गई। मैं कप मे लेकर कुर्सी पर आ बैठा। कुर्सी-मेज मैंने नही खरीदी है। गायत्री जी ने मेरी जरूरत को देखते हुए रखवा दी। यह उनकी खास कृपा कही जा सकती है, वरना कौन मकान-मालिक किरायेदार का ध्यान रखता है। किरायेदार को ऐसे देखा जाता है जैसे वह उनकी दया पर पल रहा हो।

खिड़की के पार देख रहा हूँ। वीथिका-सी सिकुडी गली के दूसरी तरफ मकानो की कतार है। छज्जे, या छत पर बच्चे, पुरुष, महिलाएँ दीख रही हैं। तफ़रीह मे हैं या काम कर रहे हैं। यहाँ बैठता हूँ तो देखता रहता हूँ। मनोरजन होता है।

मौ का पत्र आया लेकिन उसमे खुशी नही मिली। दिल और खराव हो गया। सज्जो मेरे दूर हो जाने पर भी वैमनस्य निभा रही है। माँ ने पड़ोस की शीतला से खत लिखवाया है। उन्होने साफ़ लिखवाया कि मैंने कितनी बार सज्जो से कहा, तुम्हारे पिता से कहा, किसी ने नही लिखा। सज्जो बहुत मनबडी हो गई है। पता नही उसे मुझसे क्यो चिढ़ है। मैं सौतेली माँ नही हूँ। तुम थे, थोडा डरती थी। अब बिलकुल आज़ाद हो गई है। तुम्हारे पिता कह रहे थे, उसे कॉलेज मे दाखिल करवाएँगे। मैंने मना किया तो कहने लगे खुद कुपढ़्ढी हो, उसको भी रखना चाहती हो।

बेटा, मुझे उस पर विश्वास नही रहा। क्वारी के साथ कुछ हो गया तो सिर धुनकर रोना होगा। जवान लड़की कोरी मटकी होती है, उस पर स्वास्तिक छरा अच्छा लगता है, काले निशान नही।

पढाने को पढाओ, पर उसी के मुकाबले पढा-लिखा लड़का देखना होगा। अच्छे लड़कों ने भाव ऊँचे कर रखे हैं। तुम्हारे पिता जिन्दगी-भर हवाई इरादो मे उड़े हैं, सो किसके पित्ता है जो उनको समझा सके? तो और जिद ठान लेते हैं।

मैंने गाँठ बाँध ली है बाप-बेटी के बीच मे नही आऊँगी।

मेरे हित में होगा? मैं छिपाता हूँ सज्जो की हरकत, पिता जी की उपेक्षा, रत्ती की खिसियाहट, उसकी मेरे प्रति आक्रामकता।

जाकिर और नरेश दोनों यह जानना चाहते हैं कि सेक्शन बदले जाने और मिसेस डोगरा व मिस अवतरमानी के साथ काम करने में मुझमें कोई खास तब्दीली आई है। मैं खुद नहीं जानता हूँ कि कोई तब्दीली आई है।

नरेश कहता है, ऐसा हो नहीं सकता।

मैं कहता हूँ—सेक्शन में दूसरे भी लोग हैं, यह क्यों नहीं पूछते कि उनकी वजह से तब्दीली आई क्या? और यह सच है।

क्या सच है? जाकिर पूछता है।

सच यह है कि मुझे कमलकान्त प्रभावित कर रहा है। मैं कहता हूँ।

अरे उसके पटे मत चढ़ना—वह बड़ा खतरनाक है। नरेश आगाह करना चाहता है।

यही ना कि वह नेता है। मैं कहता हूँ।

हाँ, नेता है, वह भी गिरगिट किस्म का। पैंतरे बदलता रहता है। उसकी शोहरत हड़ताल कराने में है।

मैं जानता हूँ। मैं विश्वास के साथ कहता हूँ।

जाकिर बीच में बोलता है—क्या जानते हो? वह किसी कम्पनी में हड़ताल करवाता है, कहीं धरना बैठवाता है। मौका लगते ही मालिकों से जा मिलता है।

यह गलत है। कमलकान्त से मेरी लगातार बातें होती हैं। उसमें दूसरों के लिए संघर्ष करने की तड़प है। वह ईमानदार है।

जाकिर, यह शशि अब अपने लिए बेकार होने वाला है। नरेश जाकिर से कहता है, पर जैसे ताना मुझ पर कसता है।

मैं पूछता हूँ—तुम्हारे लिए कैसे बेकार होऊँगा?

भाई हम नौकरी करते हैं, उतने से मतलब रखते हैं। अपनी निबटती नहीं, दूसरों के लिए अँगीठी पर क्या हाथ रखें? जाकिर सहज में कहता है।

नरेश दूसरी तरह से टिप्पणी करता है—मुझे चार साल हो गये

र्विस में आए। मजबूरी में एक-दो बार कमलकान्त का साथ देना पड़ा। हमेशा यही देखा—शोर-शराबा, प्रचार-धचार ज्यादा हुआ, हाथ लगी पोछम। सुनो शशिकुमार, यह जो तीन-चार हजार महीने की तंख्वाह पाने वाले व्यवस्थापक हैं, वे मालिकों द्वारा छटे हुए रखे जाते हैं। जिस जगह भी मालिकों को देना पड़ा, समझ लो व्यवस्थापक नाकाबिल घोषित हुआ। और कोई व्यवस्थापक इतना भोला नहीं होता कि आसानी से मात खा जाए।

मानता हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ।

बस मान ही लो, इसी में बहतरी है। कमलकान्त के चक्कर में फँसे तो नौकरी से हाथ धो बैठोगे। नये-नये वैसे हो।

अपनी लडाई भी नही लडना चाहते ? मैं जैसे कमलकान्त की अनुपस्थिति मे उसका प्रवक्ता होकर बोल रहा हूँ। मुझे अपने पर खुद ताज्जुब होता है कि इतनी हिमायत में कैसे बोल रहा हूँ।

अपनी लडाई हम खुद ही लडते है। सुनो, पिछले साल मेरा प्रमोशन ड्यू था। बॉस ने मुझे रोककर दूसरे को देना चाहा। मैंने लिखकर विरोध-पत्र दिया। बॉस को बडा नागवार गुजरा। कमलकान्त ने उस वक्त मुझसे कहा था यूनियन को केस सौंप दो, बॉस पानी माँगता नजर आएगा। मैंने कहा, पहले मुझे निबटने दो। पार नहीं पड़ी तो वैसा कर लूँगा जैसा तुम कहते हो। मैं अपने केस के तथ्य और अपने पक्ष के तर्क हर उत्तर के साथ देता रहा। छः महीने तक कागजी लडाई चली। आखिर फैसला मेरे हक मे हुआ।

तुम्हारी तरह हरएक इतना साहस नही रख सकता। बॉस किसी बहाने हटा सकता है नौकरी से।

पंसारी की दूकान है क्या ? बॉस के ऊपर भी हैं। हालांकि मैं यह मानता हूँ ऊपरवालों का सुर नब्बे प्रतिशत वही होता है जो उनके मातहत बॉस का। नरेश बोला।

मैं समझ गया छोटी-सी बात बहस में पड गई। मैं तर्क दूंगा यूनियन को ताक़तवर बनाने का तो यह बहस भी तान ले जायेंग यूनियन के दोषों की तरफ। मैंने तत्काल खत्म करने के प्रयोजन से कहा—होगा

यार, मुझे कौन-सा कमलकान्त-सा नेता बनना है ! वह कहता है, मैं सुन लेता हूँ। प्रभावित करने की योग्यता उसमें है, यह तो मानते हो ?

नेतागिरी अक्ल उड़ाने की योग्यता का ही नाम है। जाकिर ने कहा।

नरेश कह रहा है—जायका खराब हो गया यार !

अगर मिसेज डोगरा और मिस अवतरमानी की बात सुनाता तब ?

तब मजा आता।

तो सुन लो। डोगरा जब भी बात करती है तो अपने आदमी की, बच्चों की। वह यह जाहिर करना चाहती है कि उसका पति उसे बेहद प्यार करता है। उसकी नजर देखता रहता है कि कौन-सा इशारा पाये और गुलाम की तरह हुक्म बजा लाये। बच्चे उससे इतना लगाव रखते हैं कि फादर की परवाह नही करते।

रहने दे भाई, वही तो हूर की परी है। जाकिर जैसे बोर हो उठा।

कद्दू की-सी तो शक्ल है। नरेश अपने वास्तविक लहजे मे आता है।

अवतरमानी की सुनाऊँ ? मैं मजा लेकर मुस्कराता हूँ।

रहने दे। पता चल गया तू उनके लिए खारा साबित होगा। नरेश ने उकताकर कहा।

मुझे खुशी हुई यह जानकर कि चलो यह इतना तो समझते हैं कि मैं अब पहले का-सा संकोची और दब्बू नही हूँ।

मैं भी यह महसूस करता हूँ कि चारों तरफ के माहौल ने मुझमें बदलाव पैदा किया है। मैं उन सलवटों को सीधा करने में सफल हो रहा हूँ जो पढ़ाई के वक्त से, बेकारी के दौरान मुझमे पैदा हो गई थी। लेकिन क्या निश्चयता है कि दूसरी तरह की सलवटें नही बन रही हैं ? वे अभी नामालूम हो, बाद मे अपनी तासीर दिखाएँ !

मेरे लिए आश्चर्य की बात थी कि आँगन मे से गायत्री जी की तेज आवाज आ रही थी। डॉक्टर मसर्फीलाल कुछ देर पहले नीचे उतरकर गये थे। आदत के अनुसार बाहर से पूछा था—कहो, कैसे हो ?

मैंने कहा, कमरे में तो आइये।

नही। फिर आऊँगा। दस बज गये, लेट हो गया। एक प्रसिद्ध महन्त जी आए हैं, उनका प्रवचन सुनने जा रहा हूँ।—वह ज़ीना उतर गये।

आज इतवार है। लोग सात दिन की ज़िन्दगी को छुट्टी के दिन अनियमित कर सहजता पाते हैं। मेरा जैसा छः के बजाय साढ़े सात बजे तक नही उठता। कोई साथ बैठने, बात करने वाला नही है सो किताब को साथी बना लेता हूँ। दो-तीन हिन्दी-अंग्रेज़ी की पत्रिका खरीदता हूँ, उन्ही को लौट-लौटकर पढ लेता हूँ। आज मैंने कोई कार्यक्रम नही तय किया है। जैसा जी चाहेगा बना लूँगा।

गायत्री जी सुबह-सुबह क्यों नाराज हो रही हैं? किस पर हो रही हैं?

मुझे माँ की याद आती है। काफी देर तक ध्यान उधर हो जाता है।

मम्मी बुला रही हैं, आपको। अनुपम है।

क्यों, क्या बात है? मैं पूछता हूँ।

आपको नाश्ता करना है। लेकिन अनुपम का चेहरा फूला हुआ है।

नाराज क्यों हो?

कहाँ हूँ। वह ढीला होता है।

मुँह गप्पू हो रहा है। क्या सुबह-सुबह…

यह रत्ती का काम है। बे-शऊर होती जा रही है।

क्या हुआ? उसने क्या कर दिया?

मैं किसी दिन झापड रसीद कर दूँगा, ठंडी हो जाएगी। मैं बड़ा हूँ उससे।

अभी कह रहे थे, नाराज नहीं हो। मैं जैसे उसके गुस्से मे मजा ले रहा हूँ।

मुझसे जलती है। काम-वाम करती नही है, रोटी तोड़ती रहती है।

तुम करते हो?

मैं लड़का हूँ।

गायत्री जी तुम्हें डाँट रही थीं या उसे?

दोनो को। आपको बुलाने की बात थी। यह कोई काम था। इसमें क्या मेहनत करनी थी, या पसीना आना था? मम्मी ने उसे कहा। फौरन

मने कर दिया—अनुपम से क्यों नहीं कहती, वह बुला लाये ? मैं क्या उसकी नौकर हूँ।

मैं हँसी नहीं रोक सका। हँसी खुलकर आई।

आप हँसे क्यों ?

वह मेरी नौकरानी नहीं है ना ! मेरी बहन भी मुझसे इसी तरह बर्ताव करती है।

करती है। इन लड़कियों मे अकड़ ज्यादा आ गई है। मम्मी कह देती हैं—पराया धन है। है, तो क्या हमारी छाती पर मूँग दलने के लिए है। मैं बुलाने आ गया, नौकर हो गया क्या ?

खड़े-खड़े सारा गुस्सा निकाल लोगे ?

शिष्टाचार भी कोई चीज होता है। किसी को कुछ समझती नहीं। आखिर जत्ती दीदी भी तो हैं। वह तो उसकी तरह नहीं हैं। चलिये, ऊपर चलिये। इतनी-सी देर मे भिड़ा देगी—देखो मम्मी, बातें मठारने बैठ गया।

मैं फिर हँस पड़ा।

सच मे, वह बहुत लगाई-बुझाई करती है। अनुपम ने ज़ोर देकर कहा ताकि मैं उसकी बात पर विश्वास करूँ।

मेरे पास विश्वास करने के लिए खुद का अनुभव था—मेरी बहन भी ऐसी है।

लेकिन मैं उसकी शिकायत करूँ तो कोई मेरी बात पर विश्वास नहीं करता—न मम्मी, न डैडी।

तुम लड़के हो। मैं कह रहा था कि आँगन के दरवाजे से रत्ती की पुकार आई—अनुपम, बातें मत बना। मम्मी बुला रही हैं, जल्दी आ।

देखा आपने ? एक नम्बर की खलनायिका है। मौका देखती है।

हीरो को तो सामना करना पड़ता है। है ना ?

किसी दिन मुँह तोड़ दूँगा।

एक्शन फिल्म बन जायेगी। चलो, नहीं तो फिर···

दरवाजा भिड़ाकर हम घर में पहुँच गये।

जहाँ जाता है चिपककर बैठ जाता है। रत्ती बोल पड़ी।

तू क्यों रौब दिखाती है ? खुद क्यों नहीं चली गई ? तब तेरे पैर टूट

रहे थे ?

मैं तो लड़की थी। तेरे पैर में क्या मेहँदी लगी थी ?

रत्ती, चुप क्यों नहीं होती ? जत्ती ने डाँटा।

इसे क्यों नहीं कहतीं ? जब से पीछे पड़ा है।

अनुपम, तू भी नहीं लड़ेगा। जत्ती ने अनुपम के खुले मुँह पर जैसे हाथ रख दिया हो। कुर्सी लाओ ना !

मूढा पड़ा तो है। बैठिये। अनुपम ने मुझसे कहा।

अब कुर्सी लाने पर बहस करो। खड़े-खड़े कर लेना नाश्ता। जत्ती ने कहा, और रसोई में चली गई।

दोनों पर असर हुआ। आँगन में मेज भी लग गई, कुर्सियाँ भी आ गईं। धीरे-धीरे नाश्ते की प्लेट भी लग गईं। गरम पकौड़ियाँ, समोसे, घर की बनी मिठाई।

स्पेशल है ? मैंने पूछा।

रविवार है। प्रोग्राम शुक्रवार को ही बन गया था। जत्ती ने जवाब दिया।

इनके लड़ने का प्रोग्राम भी शुक्रवार को बन गया था !

यह किसी समय भी हो सकता है। एवररेडी हैं।

तुम दीदी, इसे कम कहती हो, मुझे ज्यादा। रत्ती बोली।

चुप रह ! जत्ती ने टोका।

इसको तो पूजा के आले में रखकर पूजो। अनुपम बोला।

जबान नहीं रोकेगा ? जत्ती ने डाँटा।

कभी रुकी है ? कतरनी-सी चलाता रहता है।

किसी और का ध्यान तो किया करो। हर वक्त…जत्ती ने फिर डाँटा।

तमाशा देख रहा हूँ। दर्शक भी होने चाहियें।

हुँह ! रत्ती ने जैसे फुंफकी छोड़ी।

डॉक्टर साहब चले गये ?

वह सिर्फ दूध पीते हैं। पी के चले गये। महात्मा जी के प्रवचन सुनने।

महात्मा सब ढोंगी। भोले लोगों को फुसलाते हैं। अनुपम बोल उठा।

तेरी तरफ से ईश्वर भी ढोंगी हैं। रत्ती ने उसकी बात काटी।

फिर···? जत्ती ने डपटा।

मम्मी जी को बुला लीजिये। पहली बार गायत्री जी के लिए मम्मी शब्द निकला। अभी तक सम्बोधन की अनिश्चयता में 'आप' से काम चला लेता था।

मम्मी, तुम भी आ जाओ। अकेली रह जाओगी! जत्ती ने पुकारा।

आ रही हूँ। तुम शुरू करो।

शुरू तो कर चुके। आधा होने को आ गया। रत्ती चुप रहना चाहकर भी नहीं रह सकती।

गायत्री जी ट्रे में पकौड़ी और समोसे और ले आईं। अनुपम कुर्सी छोड़कर रत्ती की आधी कुर्सी पर धक्का देते हुआ बैठ गया—जगह कर!

मरे कटेंगे, पर रह भी नहीं सकेंगे एक-दूसरे के बगैर। गायत्री जी बोलीं।

तुमने इसको सिर चढ़ा रखा है। अनुपम शुरू हुआ।

चुप रह, फिर तुली दिखाने लगा। रत्ती ने मुँह बनाया।

सभी को हँसी आ गई।

तुम दीदी, बिल्कुल उस फिल्म की दीदी हो···जया ने रोल किया था।

मालूम तो है नहीं, उदाहरण देगा। याद कमज़ोर है तो शोले की जया क्यों नहीं कह देता? इस पिक्चर को तो बीस बार देखा है।

सौ बार। हॉल ही में तो बैठा रहता था। अनुपम ने कोहनी मारी रत्ती के।

मम्मी, अब इन दोनों को चुप कर दो। सुबह से लड़ रहे हैं, माथा दर्द करने लगा। जत्ती ने वास्तव में माथे को हाथ पर ठहरा लिया।

यह सब डॉक्टर साहब का सीधापन है। उन्हें तो घर से मतलब नहीं है।

महात्मा जी के प्रवचन सुनने गये हैं! इतवार है! अनुपम व्यंग्य करता हुआ बोला।

और तुम्हारा रविवार है सिर खाने के लिए। जत्ती ने जवाब दिया।

इससे माइंड फ्रेश होता है दीदी, तुम भी लड़ने का अभ्यास करो। रत्ती बोली।

तुमसे लड़ा करूँगी। जत्ती मुस्कराई।

इससे। यह बहुत हेंकड़ी दिखाता है! लड़का है ना! रत्ती का अभिप्राय किससे था, मैं सोचने लग गया—अनुपम से या मुझसे?

नाश्ते का कार्यक्रम खत्म हो गया, तो मैं कमरे में आ गया। आकर खाट पर पड़ गया। कभी-कभी लगता है मैं कितना अकेला हूँ! हँसी-मज़ाक, दोस्तों की दोस्ती, दफ्तर की औपचारिक-अनौपचारिक 'हलो-हलो'। काम, पढ़ना, आराम—बस। पर जैसे फिर भी तनहा।

दूसरों की इमेज, यानी छवि गढ़ने में हम कितने पक्षपाती और अन्यायी हो जाते हैं! हम क्यों भूल जाते हैं कि इमेज व्यक्ति के चरित्र से संबंधित होती है? चरित्र कितनी नाज़ुक चीज़ है!

मेरे पास दो उदाहरण हैं—कमलकांत का, मिस अवतरमानी का। और तीसरा अब सज्जो का।

सज्जो ने मेरी कल्पना को ढहा दिया। मैं समझता था मेरे से रिश्ते में उसका केन्द्रीय भाव ईर्ष्या का है, प्रतियोगिता का है। लेकिन उसका खत आया। मैं पढ़कर आश्चर्य में नहीं पड़ा, बल्कि अजीब से दर्द में हो गया। उसने लिखा, भैया, तुम मेरा खत पाकर ताज्जुब करोगे। लेकिन मैंने इसलिए लिखा है कि बिना लिखे रह नहीं सकी। पहली बात, कि मैंने कॉलेज में प्रवेश ले लिया है। क्या करती! घर में रहते-रहते ऊबने लगी थी। तुम थे, तो तुमसे लड़-झगड़कर अपने अहं की तृप्ति कर लेती थी। तुम चले गये तो कमी खटकने लगी। तुम्हारे पास मेरे विरुद्ध बहुत-सी शिकायतें हैं। क्या ऐसा भी है कि तुम मुझसे घृणा करते हो? तुमने माँ को पत्र लिखा, उसमें मुझे सिर्फ औपचारिक स्नेह देकर रह गये। मैं क्या वास्तव में इतनी बुरी हूँ? यह भी सोचा कि मैं तुम्हें कितना चाहती हूँ? मेरे क्या दस भाई हैं? माँ मुझे पता नहीं कितनी उजड्ड और बे-अक्ल समझती हैं। मैं ऐसी तो नहीं हूँ कि अपना भला-बुरा नहीं सोच सकूँ? मैं शक को झेल सकती हूँ, कोई मुझे हर तरह से नकारे, यह बर्दाश्त नहीं कर

सकती। सब क्यों चाहते है कि उनके मुताबिक चला जाये ?

तुम तो यहां से हटकर मुक्त हो गये, मुझे यहीं की घुटन और ऊब में जीना है। आगे का भविष्य भी अनिश्चित है—घर की हालत देखकर।

अगर विश्वास कर सको तो जान लो, मैं तुम्हें बहुत चाहती हूँ।

—तुम्हारी बहन सज्जो

दिमाग के सोच लेने भर से खून का खिंचाव खत्म नहीं होता। सज्जो ने बहुत कम लिखा है—वह शायद और ज्यादा लिखती। मुझे उसके इस खत का जवाब देना होगा। लेकिन मैं भी चाहता हूँ उसके पत्र ने जिस हलचल को मुझमें पैदा किया है, वह सामान्य सतह ले ले।

कमलकान्त को मैं अभी थोड़ा-सा और जानना चाहता हूँ, उसके बाद उसके बारे में लिखूंगा।

मिस अवतरमानी के बारे में जाकिर और नरेश ने क्या-क्या नहीं बताया! एक बार तो नरेश यहां तक कह गया वह फ्लर्ट किस्म की लड़की है। दूसरों को बेवकूफ बनाती है।

मेरा इतने महीनों का दफ्तरी अनुभव है, जो लड़की काम-काजी वर्ग में आ गई, वह साहस तो पैदा करेगी। यह उसकी जरूरत है, क्योंकि उसे पुरुष का सामना करना होता है। हम उस शख्स की निंदा नहीं करते जो लड़कियों को फुसलाकर उनकी जिन्दगी बरबाद करता है। लड़की को रद्द करना है। उससे आशा रखता है कि वह आदमी के नीचपने को पहचाने, उससे खबरदार रहे।

अवतरमानी जब भी मूड में होती, अपने से सम्बन्धित खासी निजी बातें करती। उसने कभी परवाह नहीं की कि वह किनके सामने कह रही है। वे जो सुनते हैं—उसका सही इस्तेमाल करेंगे, या उसी के खिलाफ बदनामी की हवा बनायेंगे? दफ्तर में उसका अधिक लोगों से परिचय शायद गलतफहमियों को तूल देता हो।

उसे क्या पता नहीं था कि कौन कैसा है? उस तक किसी के ओछेपन की बात आती—वह मौका पाकर निबटा देती। सामने वाला या तो शर्मिंदा हो, या नकारे कि वैसा उसने नहीं कहा।

मैंने उससे कहा—तुम उलझती क्यों हो ?

मिस्टर शशि, क्यों न उलझूँ ? तुम बताओ, क्या यह इन लोगों का विशेष अधिकार है ? हम सब क्या किसी परिवार से नहीं आती ?

सब एक-सी नहीं होती ।

सब एक-सी होती हैं, मैं दावे से कह सकती हूँ । नौकरी करना मजबूरी भी हो सकता है, शौक भी । लेकिन किसी लड़की को शौक नहीं होता कि बदनामी ले ।

अवतरमानी इसी तरह की बातें करती है । ठोस देह और खुरखुरी आवाज़ उसके भरे-भरे चेहरे को सख्ती दिये रहती है । लगता है कि वह अन्दर से भी मजबूत है, जैसी बाहर से दीखती है । क्या मेरा वहम हो सकता था ? पहले मैं मान सकता था, अब मेरे पास सबूत है ।

मैं अगर नरेश या जाकिर या ऐसे दोस्तों को उसके बारे में बताऊँ—वे कहेंगे वह बहुत चालाक है । रुख देखकर रुख अपनाना जानती है ।

यह जानते हुए कि लोग अपनी धारणाओं को तोड़ना चाहते हैं, मैंने किसी से नहीं कहना चाहा । आखिर सज्जो का अक्स मेरे दिमाग में क्या था ? और गायत्री जी अनुपम और रसी के बारे में कह रही थी—लड़ेंगे भी, साथ के बगैर चैन भी नहीं पायेंगे ।

एक दिन अवतरमानी ने कहा—मिस्टर शशि, आज पिक्चर जाने का मूड है ।

चली जाइये । मैंने कहा ।

तुम नहीं चल सकते ?

मैं ?—मैं हड़बड़ाया । सुना-सुनाया सारा उभर आया दिमाग में ।

सोच में पड़ गये ? रहने दो । मैंने वैसे ही कह दिया । वह गर्दन झुकाकर फ़ाइल पढ़ने लगी ।

मैंने घड़ी देखी दो बजे थे । मैं भी काम में लग गया ।

पाँच मिनट नहीं बीते कि वह फिर बोली—तुम्हें मेरे साथ चलने में एतराज़ है ? तुम ऐसे तो नहीं लगे मुझे ।

कब जाना होगा ?

कब क्या, अभी चलना होगा । आधे दिन की छुट्टी लेनी होगी ।

यह और भी अजीब स्थिति थी ।

तुम अगर जाहिरा नही जाना चाहते, तो मैं पहले चली जाऊँ ? बीस-पच्चीस मिनट निकाल लेना। पिक्चर हाउस थोड़ी दूर है। अच्छी फिल्म लगी है। टिकट मैं खरीद लूँगी।

वह खड़ी होकर मेरी मेज़ के पास आ गई थी। गनीमत थी कि बोल इतने धीमे से रही थी कि दूसरे न सुन पायें।

मिसेज़ डोगरा से पूछा ? मैंने बिना बात के कह दिया। जैसे बचाव खोज रहा होऊँ।

वह हमारे साथ कभी नही गईं। अपने हस्बेंड के साथ जाती है...और हमारे साथ क्यों जायें ? चलो...अपना दिमाग बना लो।

मेरी हिचक और भय यकायक टूट गये—पहले मैं जा रहा हूँ। मैंने कहा।

थैंक्यू। उसने कहा, सीट पर जाकर बैठ गई। मैंने एप्लीकेशन लिखी। सेक्शन ऑफीसर को दी, बाहर आ गया इमारत से। हॉल की तरफ चल दिया।

लेकिन असलियत यह है कि भय मुझमे अभी भी है। लोग कल ही मुझे भी अवतरमानी के साथ जाड़ देंगे। क्या मैं झूठ बोल दूँगा कि उसके साथ नही गया ? खासतौर से नरेश और जाकिर से ? देखा जायेगा। जब निकल आया तो कल की क्यों सोचूं ?

मैं हॉल तक पहुँचा, दो टिकट ले लिये। दस मिनट बाद वह आ गई।

टिकिट ले लूँ। वह खिड़की की तरफ बढने लगी।

मैंने खरीद लिये।

उसने पर्स खोला, नोट मेरी तरफ बढ़ाया—इसे रखो !

रहने दो ! एक ही बात है। मैंने नोट नही लिया।

नो, मैं तुम्हे लाई हूँ। तुमने साथ आने का बोल्ड कदम उठाया है। लेकिन मैं कम्पनी चाहती थी—तुम्हारी कम्पनी। उसने साफ कहा। इसे रख लो। उसने मेरे हाथ पर नोट रख दिया।

क्या तय करके चली थी घर से ? मैंने मुस्कराकर पूछा।

नही, सुबह जब हॉल के सामने से दफ्तर आई, तब दिल में आया। फिर तुमसे पूछा। तुम पसोपेश में पड़े। मैंने सोचा नही जाऊँ। फिर मन

नहीं माना। मैं तुम्हारा साथ चाहती थी। मैंने एक तरह से तुमसे ज़िद की। उसने घड़ी देखी। जल्दी आ गए ना ?

हाँ। तीन बजे शो छूटेगा। लोग बात कर रहे थे। मैंने जवाब दिया। ऊपर चलें। वहीं बैठें।

ऊपर कैण्टीन थी। जल्दी आए हुए लोग सोफा, या कुर्सियाँ सम्भाले बैठे थे। ठंडा या गरम जो जिसको भा रहा था, ले रहे थे। अपनों से बातें करने में मशगूल थे।

हमने भी एक मेज़ घेर ली।

सिनेमा भी क्या चीज़ है—ज़िन्दगी का एक हिस्सा बन गया है। अवतरमानी ने कहा।

ऊब से राहत मिलती है। तुम नाटक नहीं देखतीं ? मैंने पूछा।

नहीं। तुम ?

कभी-कभी देखता हूँ। जब से यहाँ आया मुश्किल से दो देखे हैं।

मैं रात में जा नहीं सकती। ऑडीटोरियम दूर पड़ते हैं। उसने वजह दी।

कॉलेज में था, तब हिस्सा भी लिया। उस वक्त लगता था वह एक ज़रिया है, अपने को जानने का। फिर छूट गया। अब भी कभी-कभी ज़ोरों से इच्छा होती है। मैंने कहा।

छूटता जाता है, सब। मैं भी पहले क्या-क्या सोचती थी ! मैं कभी नहीं सोच पाई कि शादी करूँगी, आम लड़कियों की तरह गृहस्थी बसाकर बैठ जाऊँगी। कुछ करना चाहती थी। ऐसा, जिसमें आराम से रह सकूँ, पर कुछ करूँ। स्वतन्त्र होकर करूँ।

पर हो नहीं पाता। मुझमें ठंडी-सी साँस उठती है।

हाँ। घरेलू और बाहरी परिस्थितियाँ जकड़ लेती हैं। लगता है यह सिर्फ पैसे की कमी वाली परिस्थितियाँ हैं। लेकिन नहीं, वे दूसरों की चाहों के घेरे होते हैं। दूसरे हमें प्यार से डराकर, मजबूर कर को करवाते हैं। हम न चाहकर भी करते हैं। क्या ऐसा नहीं कि अपनों के सहयोग पाने की कोशिशों में, हम अकेले होते

अवतरमानी ने जैसे मेरे गुप्त हिस्से को यकायक बेपर्दा

मैं सरलता से मान बैठा—हाँ, ऐसा ही है। पर क्यों होता है?

दूसरो के स्वार्थ। अपने स्वार्थ। हम एक-दूसरे से खिचना चाहते हैं, उसे सीचना नही चाहते।

तुम बहुत गहरी हो। ऊपर से क्या दीखती हो? मैंने जैसे उसके पूरे व्यक्तित्व पर टिप्पणी कर दी।

तुम क्या वही हो जो दीखते हो? तब मैंने तुममे वही अकेलापन कैसे तलाश लिया जो मुझमे है? लोग इसी को छिपाते है। वे इससे अपने को दूर रखना चाहते हैं—इसलिए दूसरो पर तरह-तरह के आरोप मढते हैं। उसी से राहत और मनोरंजन पाते हैं।

हम सिनेमा देखने आए हैं। मैंने उसे घबराकर कहा।

हाँ, इसके बाद वही देखेंगे। इतनी बात तो मैं तुमसे जरूर करती। चाहे जब करती। इतने दिन साथ काम करने के बाद मेरा तुम्हारे बारे में यह निष्कर्ष था।

अब इच्छा पूरी हो गई? मैंने मुस्कराकर पूछा, हालाँकि यह मुस्कराहट बहुत खुश्क थी और जबरन लाई गई थी।

अवतरमानी मुझे बख्शना नहीं चाहती थी। बोली—उस अकेलेपन को मैंने पहचानकर इशारा किया। तुम बचने का रास्ता ढूँढने लगे। मैं जानती हूँ जब मैंने तुममे चलने के लिए कहा, तुम हड़बड़ा गये। क्योंकि तुम दूसरों की बनाई राय जो तुम्हें दी गई थी, उससे तुरन्त निर्णय ले रहे थे। मैंने सोचा जाने दो, फिर कोई मौका। लेकिन फिर मैंने सोचा—फिर क्यो? आज और अभी क्यो नही? तब मैंने दोबारा, दबाव के साथ कहा। मैं जानना चाहती थी क्या तुम एक हिम्मत वाले दोस्त हो सकते हो या बोदे हो—फर्जी हो! जैसे दूसरे हैं।

मिस अवतरमानी, तुम ज्यादा कडवी हो रही हो। मेरे बारे में शायद ज्यादती में प्रशंसक हो।

हो सकता है। लेकिन मैं तुम्हे पहचानने मे सफल हुई हूँ, इस वक्त। और तुम पर विश्वास कर सकती हूँ कि सही दोस्त साबित हो सकते हो।

अवतरमानी ने जैसे एक-पक्षीय निर्णय सुना दिया। मुझे लगा अपना यह हाथ जिसे मैं अपने दूसरे हाथ से जकड़े बैठा था, उसे उसने खुद

अपना हाथ बढ़ाकर खोला और अपने हाथ में लेकर हिलाने लगी। जैसे हम परिचय पाने के बाद किसी से हाथ मिलाते हैं।

पर मेरी तरफ से मेरा हाथ, बहुत झिझका हुआ था—सशंक।

शो छूटने पर हम हॉल में गये। सारी फिल्म देखी। वह भी अपने में रही। मैं अपने में।

दफ्तर की छुट्टी का वक्त हो गया। पाँच बजने का करीब-करीब सब बेताबी से इन्तज़ार करते हैं। दस मिनट पहले से बीस मिनट बाद तक दफ्तर छोड़ने का क्रम लगा रहता है। साढ़े पाँच तक तकरीबन सारा दफ्तर खाली हो जाता है। दूसरी कम्पनियों के दफ्तरों का भी यही हाल है।

मैं इमारत से बाहर आया तो ज़ाकिर और नरेश मिल गये।

सेक्शन बदला है या कम्पनी बदली है ? नरेश ने ताना कसा।

हम आज जानकर रुके हैं, तुम्हें पकड़ने। अनिल भी आ रहा है। ज़ाकिर ने कहा।

मैं समझ रहा था यह शिकायत होनी है।

सबसे पहला दोस्त मैं हूँ जिसने तुम्हारी तरफ़ हाथ बढ़ाया था। तुम बड़े तोताचश्म हो। पाँच-पाँच दिन हो जाते हैं मिलते नहीं ?

हमें क्या पता नहीं है, क्यों नहीं मिलते ? ज़ाकिर ने कहा।

मुझे बोलने दोगे या नहीं। मैंने नम्रता से कहा।

तुम बोलने लायक रहे कहाँ ! आधा दफ्तर चर्चा कर रहा है। नरेश ने सीधा आरोप ठोका।

इतने में अनिल आ गया—पकड़ लिया पंछी को ?

तीनों ने साज़िश की है क्या ? मैंने खिसियानी हँसी अपनाते हुए कहा।

बिल्कुल। आज तुम्हारे ऊपर कॉफी का खर्चा लगेगा, उसके साथ हम तुम्हारी खबर लेंगे।

मैं सरेंडर हो जाता हूँ।

होना पड़ेगा, अगर छिपे-छिपे मौज उड़ाओगे। यह अनिल था।

यहाँ से तो चलो मेहमान साहब ! किस रेस्त्राँ में चलें ? आपकी जेब क्या बोलती है ?

कमी पड़ेगी तो मैं दे दूंगा। लेकिन खाते मे लिखकर। अनिल ने दूसरों को आश्वस्त किया।

घेराव जबर्दस्त है। मैं मज़ाक का माहौल बनाना चाह रहा था। साफ था कि मुझे फालतू बातें सुननी पड़ेंगी और अपने पर ज़ाब्ता भी रखना पड़ेगा।

चलकर रेस्त्राँ आए। बेरा को ऑर्डर दिया गया।

तू इतना कतराने क्यों लगा हम लोगों से? नरेश ने फिर शुरूआत की।

तुम्हारा ख़याल है। मैंने उत्तर दिया।

हमारा ख़याल तो बहुत-कुछ है। ज़ाकिर बोला।

और सबूतों के साथ है। अनिल बोला।

अगर इस विषय को छोड़ दें तो? मैंने सवाल किया।

इसके अलावा दूसरा विषय हो क्या सकता है? टेबिल के कागज़ों की बात करना, सिरदर्द बढ़ाना होगा। नरेश ने कहा।

एक रहस्य हमारे पास है, उसे हम बाद में खोलेंगे। अनिल बोला।

मेरी समझ मे नहीं आ रहा तुम लोग किस मूड में हो। मैंने जैसे बहाना ढूंढा।

बहुत अच्छे मूड मे हैं। और तुझे भी अच्छे मूड में रखना चाहते हैं। लेकिन जानना चाहते हैं मीर मार लिया या कोशिश जारी है? ज़ाकिर ने पूछा।

आखिर फाँस ही लिया अवतरमानी ने? मुझे तो विश्वास था तू दाना नहीं चुगाएगा। नरेश ने व्यंग्य किया।

अब सीधा विषय मेरे सामने आ गया था। मैं पूरी तरह सतर्क हो गया।

तो विश्वास टूटा कैसे? मैं अपने पक्ष से शुरू हुआ।

विश्वास टूटने के सबूत है। हमें यह भी पता चल गया कि तुम्हारा अवतरमानी के यहाँ आना-जाना है। समय वही बताती होगी कि इस वक्त आना? अनिल ने चुटकी भरी।

तुम या हम किसी को समय नहीं बताते कि इस वक्त मिल सकेंगे।

तर्क से बहस बनती है। बहस में असली मुद्दा छिप जाता है। उसके पास तुम अकेले नही जाते हो। कई हैं जनाब। ज़ाकिर बोला।

बहुत ज़्यादती है किसी के साथ यह। हम अगर ऐसा नही सोचें किसी दूसरे के बारे में तो हमारा क्या बिगड जाये? मैंने सहज कहा।

वह कैसी है, यह सबको पता है। दूसरी लड़कियो के बारे मे ऐसी राय नही है। नरेश ने कहा।

है। तुम्हारी नहीं होगी, अनिल की होगी। अनिल की नही होगी और किसी शख्स की होगी। लेकिन जो लडकी बाहर है, उसके बारे मे एक ही तरह की राय है—वह बदचरित्र है। फाहशा है। मैं झोंक में कह गया। मैंने सोचा था अवतरमानी या अपना किसी तरह से बचाव नही करूंगा। सफाई भी नही दूंगा। लेकिन पा रहा था, बात उसी तरफ झुक रही थी। नयी नौकरी है; तुम यह क्यों नही समझते चुगलखोर लोग बॉस के कान भर सकते हैं? वह गली निकालकर दूसरे चार्ज लगाते हुए तुम्हारी फाइल खराब कर सकता है। ज़ाकिर ने जैसे मुझे चेतावनी दी।

तुम बता रहे थे, तुमने अपने प्रमोशन का केस अपने-आप लड़ा था, और जीते थे। मैं कमज़ोर नही पड़ूंगा। मैं उससे आगे भी बढ़ सकता हूँ। मैंने दृढता से कहा।

तुम्हें कमलकान्त का विश्वास होगा। नरेश बोला। लेकिन क्या यह ज़रूरी है कि हम अपने को आफत में डालें? जिन्दगी सहज मस्ती मे काट यार! अगर इश्क-विश्क करना है तो दफ्तर के बाहर कर। सुरक्षित क्षेत्र देखकर। गगा के धुले तो हम भी नहीं हैं।

किसी का विश्वास मैं नहीं तोड़ सकता। लेकिन तुम लोग अगर चाहो तो यह मान सकते हो, मेरा कोई गलत इरादा नही है। जिस दिन इरादा होगा, तब वह गलत नही होगा, क्योकि वह चाहेगी, मैं चाहूँगा। मेरे कहने में इतनी सख्ती, इतनी अन्दरूनी चीख थी कि मुझे खुद आश्चर्य हुआ।

तीनों को लगा मेरी तरफ से बहुत कड़ा जवाब मिल गया। शायद उनका उपदेशक अहं कहीं आहत हुआ।

पलभर के लिए सहज बातचीत में रुकावट पड़ गई।

हमारा कहना तुम्हें बुरा लगा तो हम नहीं कहेंगे। अनिल ने आगा जोड़ा।

बुरा नही लगा। कतई नही लगा। लेकिन अपने-अपने सोच का तरीका होता है। उसी के ज़रिये हम बनते या बिगड़ते हैं। हमारी दृष्टि और स्थितियो के सामना करने के तरीको मे फर्क भी हो सकता है।

क्या हमारा कोई नजरिया हो सकता है? है क्या, नरेश? ज़ाकिर बोला। और बहुत स्पष्ट लगने लगा कि चुनौती बीच में आ गिरी है।

भावुकों का होता है। उनका होना है जो समझते हैं वह हालात को मोड सकते हैं। यह एक छलने वाला वहम है, जिसमे वे जीते रहते हैं। नरेश ने वक्रता से जवाब दिया। यह जवाब मुझ पर ठहराकर दिया गया था।

हालात इकहरे-दोहरे नही होते, उनके साथ हालात के पाये होते हैं, जो उन्हें ठहराये रहते हैं। मैं अगर चाहूँ तो आज फ़ॉरेन जा सकता हूँ। मेरे पास फादर का कमाया हुआ है। मैं फॉरेन मे बस सकता हूँ। और बसूंगा। ज़िन्दगी का कोई मकसद हो ही नही सकता। सिर्फ एक है कि यह दुनिया तफरीह करने की जगह है। यह बाग है। इसमें फल हैं। तोड़ो, निचोड़ो, पियो। तोड़ो, निचोड़ो, पियो। अगर हो सकता है तो सिर्फ यही मकसद हो सकता है। बाकी सब जालसाज़ी है।

मैं चुप हो गया। गुंजाइश नही लगी बात करने की। तनाव बढ़ गया था। चारो के अह साक्षात् थे।

अब स्थिति को कौन ढीला करे? थोडी देर पहले का मजाक और हल्का-फुल्कापन गायब हो गया था, क्योंकि वह पाँचवाँ शिकार जो मिस अवतरमानी थी, जिस पर बिना परेशानी के वार किया जा सकता था वह चर्चा मे नही रही थी। हम चारों आमने-सामने हो गये थे।

कोई फौरी—दफ्तरी, राजनीतिक, आर्थिक या कैसी भी इतर बहस बीच मे नही थी। ऐसी जिसके असर मे होते हुए भी मान सकें हमारे सरोकारो से अलग है।

अनिल द्वारा यह सूचना दी गई कि नरेश को दूसरी कम्पनी मे बेहतर जगह मिल गई है। वह इस महीने की आखिरी तारीख को कम्पनी

छोड़ देगा।

दूसरी स्थिति होती तो हा-हा करके बधाई देते। सूचना को ग्रहण करते। लेकिन इस वक्त चारों के बीच उन्हीं के सोच की दीवारें थी।

औपचारिक बधाई मैंने दी। खुशी की पार्टी की माँग रखी।

वह तो होगी। अनिल ने समर्थन किया।

नरेश ने भी हामी भरी। ज़ाकिर अभी तक थका-चूका हो रहा था।

बाहर आकर सब अपनी-अपनी राह के लिए चल दिये। अँधेरा हो आया था। घर पहुँचना था।

गायत्री जी ने दो-तीन बार आग्रह किया कि मैं उनका भुगतान देकर खाना खाने वाला मेहमान बन जाऊँ। मैं अभी तक टालने में सफल रहा हूँ। यह स्वाभाविक है कि समय बढ़ने के साथ मैं इस परिवार के निकट हो गया हूँ। अब मुझमें हिचक नहीं है। गायत्री जी को मम्मी कहने लगा हूँ, लेकिन असर्फीलाल जी को डॉक्टर साहब कहता हूँ। अनुपम, रत्ती, जत्ती सबसे हर तरह की बात कर लेता हूँ। रत्ती ने जो बचकाना रवैया अपनाया था, उसे सुलझाने में काफी समय लगा।

एक दिन वह बाहर से आकर ऊपर जा रही थी, मैंने चलाकर उसे बुलाया। वह आ गई।

बैठ जाओ उस कुर्सी पर।

वह बैठ गई।

तुम मुझसे नाराज़ हो? मैंने पूछा।

वह नहीं बोली।

हो। इसलिये जानकर मेरा विरोध करती हो।

मैंने कब किया? वह तपाक से बोली।

विरोध नहीं, तो मेरी उपेक्षा तो करती हो। करती हो ना? मैं प्रतिक्रिया देख रहा था।

करती हूँ। मेरी मर्जी है। वह बोली।

मर्जी तुम्हारी है, लेकिन वजह तो होनी चाहिये? मैं पूछता हूँ।

जानते नहीं हैं ना? नहीं जानते तो ठीक है। मुझे जाने दीजिये। वह

खट से कुर्सी छोड़कर खड़ी हो गई।

बैठ जाओ! भाग क्यों रही हो?

कोई अकेले देख लेगा तो क्या कहेगा! डर नहीं लगता?

मुझे हँसी आ गई।

हँसिये मत। मुझे आपकी हँसी अच्छी नहीं लगती।

मुझे और ज़ोर से हँसी आ गई।

मेरी बेइज्ज़ती करने के लिए बुलाया है। मैं आपके कमरे की तरफ मुँह भी नहीं करती। कभी देखा आपने मुझे? उस ख़त देने की ग़लती के अलावा मैंने अपनी तरफ़ से वैसा कुछ नहीं किया।

वह तो बहुत दिन की बात हो गई।

मेरा ख़त कहाँ है?

मेरे पास रखा है।

मुझे दीजिये।

मैं उठा, बक्स के पास गया, उसमें से ख़त निकालकर उसे दे दिया।

उसने चर्र-चर्र उसे फाड़ दिया और उठकर खिड़की के बाहर फेंक दिया।

जल्दी कहिये, क्या कहना चाहते हैं?

मैं तुझे बहुत चाहता हूँ। तू बहुत भोली है।

फुसलाइये मत! मैंने कह दिया, मुझसे ग़लती हो गई। अब जाने के लिए कहिये, वरना ख़ुद चली जाऊँगी।

तू मुझसे क्या चाहती है, बता!

अपना सिर! मेरा गुस्सा मत भड़काइये।

मेरी समझ में नहीं आया कि रत्तो से आगे कैसे बात करूँ। लेकिन अचानक उसके भड़कने ने मुझे रास्ता दे दिया।

वह बोली—तुम्हीं नहीं हो। मैं किसी को भी चाह सकती हूँ। ख़त लिखूँगी, जवाब पाऊँगी। तुम्हें बता दूँगी। तुम्हारी आँखों के सामने…

रत्तो! मैं ज़ोर से बोल पड़ा। तुम मुझे जो चाहो लिखो। मैंने कहा, *मैं तुम्हें चाहता हूँ। जैसा चाहोगी करूँगा। किसी दूसरे लड़के की तरफ़* मत बढ़ना। अगर उसने जिन्दगी ख़राब…

मुझे उपदेश देने की जरूरत नहीं है। मैं अपनी मर्जी में तुम्हारी राय नहीं चाहती।

रत्ती चली गई। मुझे लगा जैसे उसने मेरे बड़प्पन को धक्का देकर दीवार से टकरा दिया।

कई दिन बाद एक शाम···

मैं दफ्तर से आया तो देखा डॉक्टर साहब के यहाँ ताला लगा था। मैंने कपड़े उतारे, चाय बनाई, पीकर आराम करने लेट गया। थोड़ी देर यूँ ही शान्त पड़ा रहा, फिर पता नहीं कब नींद आ गई।

मेरी आँख खुली जब मुझे लगा, मेरे चेहरे को किसी के होंठ बेसब्री से उठ-गिरकर स्पर्श कर रहे हैं।

उठने से पहले उसका सिर मेरे सीने पर था। वह रत्ती थी, जो फुसफुसाकर कह रही थी—उठो मत! तुम्हीं ने कहा था, मुझे चाहते हो।

मैंने गर्दन घुमाकर दरवाजे की तरफ़ देखा—वह बंद था।

मैं ठंडा और बेदम हो गया। उसने सिर उठाया। होठों की वही क्रिया दोहराई और मुझे आवेश में भर लिया।

बालों की खुश्बू मेरी नाक को घेरे हुए थी, मैं अन्दर से डर रहा था। लेकिन उसे ढकेलकर खड़ा भी नहीं हो सकता था।

फिर वह अपने-आप उठी।

बस, जा रही हूँ।

मैं खाट पर बैठा कि उसने दरवाजा खोल दिया।

सब कहाँ हैं? मैंने पूछा।

डॉक्टर गोस्वामी के यहाँ शादी में। तुम नहीं मिलते तो मुझे बहुत अफसोस होता।

हूँ···

जा रही हूँ। पेट में दर्द है, कहकर आई थी। वह सरसराती चली गई।

उसके जाने के बाद मैं सम्भाल पर आया। शुरूआत कैसी वाली हुई! मैं थोड़ी देर बैठा। फिर कमरे में नहीं ठहर लगाकर निकल गया।

हफ्ते-भर तक मैं पसोपेश में पड़ा रहा। दफ्तर जाता, वहाँ से फिर कहीं घूमने चला जाता, कमरे पर देर में आता। डर था कि रत्ती दोबारा न दोहरा दे। उसका दुस्साहस न जाने कब, क्या कर बैठे! उस शाम के बाद वह पहली-सी कटु नहीं रही थी। वह ज्यादा खुलाव और अपनापन देने लगी थी। पर उसकी आँखों की चमक मुझे कभी-कभी अन्दर से हिला देती थी। मेरी स्वाभाविकता को एक छल अपनाना पड़ रहा था, वह ज्यादा तकलीफ़देह था। मै इस स्थिति से छूटना चाह रहा था। मैं उसे कैसे बताता कि सज्जो और वह मेरे लिए बच्ची हैं—छोटी। वह इस भाषा और मानसिकता को समझ नहीं सकती थी क्योंकि वह अपने सामने बड़ी थी, समर्थ भी।

एक विचार और था—क्या उसकी नासमझी के कारण मुझे यह कमरा और परिवार का सहारा छोड़ना पड़ेगा?

मैंने फिर एक कोशिश करनी चाही। ऊपर गया। जत्ती सामने पड़ी।

रत्ती कहाँ है?

कमरे में। क्यों?

काम है। कहकर मैं अपने कमरे में लौट आया। मैंने बहाने के लिए अपना कुर्त्ता और पायजामा निकाल लिया। एक के बटन टूटे थे।-दूसरा मोहरी से फट गया था। इन्हे सीने के लिए रखा था।

क्यों बुलाया? रत्ती आ गई।

कुर्ते मे बटन लगाने हैं, पायजामा सीना है। यह लो बटन और रील। सूई रील मे लगी है।

ऊपर दे देते। रत्ती ने कुर्त्ता ले लिया।

तुमसे बात भी करनी थी। मै उस शाम के बाद से बहुत परेशान हूँ।

मैं तो नहीं हूँ।

कभी किसी ने देख लिया तो?

मैं इतनी बेवकूफ नहीं हूँ कि अपने को खतरे में डालूँ, तुम्हें सबकी नजरों में गिराऊँ।

लेकिन यह खुलना हमें खुद को धोखा दे सकता है।

नहीं देगा, बेफ़िक्र रहो। मुझे जो तुमसे पाना था, वह पा लिया।

अब तुम उपदेश देना चाहो तो दे सकते हो। तुमने कहा था कि दूसरे किसी लड़के की तरफ मत बढ़ना। नहीं बढ़ूँगी। वादा करती हूँ। तुम भी वादा दोगे? रत्ती ने सीते-सीते मेरी तरफ़ देखा।

मैं चुप रहा।

नहीं दे सकते? मैं दे सकती हूँ। कोशिश-भर दोबारा वैसा नहीं होगा। लेकिन कभी हुआ, तो तुम ग़लत नहीं समझोगे। न रोकोगे। मैं तुम्हारा आदर करती हूँ।

तुम मुझे मेरी बहन सज्जो की तरह लगती हो। मैं फ़ौरन कह पड़ा।

पर मैं भाई नहीं मानती। आसान रिश्ता है, बना लो। जरूरत तुम्हें होगी, मुझे इस रिश्ते की जरूरत नहीं है—किसी भी रिश्ते की नहीं। फिर बोली—जाऊँ यही समझाने के लिए बुलाया था? मैं जानती थी किसी-न-किसी दिन यही कहोगे। मैं छोटी और तुम्हारी नजर में भोली हूँ ना!

रत्ती मेरे सामने बैठी बटन टाँकती रही। फिर उसने पायजामे में सौंप भरी। चलते-चलते एक चुभता हुआ ताना और सम्भला गई—ज्यादा मत सोचा करो। सोचने से गुत्थी पड़ती हैं।

उसकी मुस्कराहट इतनी सहज कैसे थी!

माँ और सज्जो दोनों के पत्र अलग-अलग आए थे। उन्होंने मुझे बुलाया था। माँ ने पहले की तरह पड़ोस से लिखवाया था। पत्रों को पढ़कर कोई भी समझ सकता था कि घर चाहे कितना शान चल रहा हो पर माँ और बेटी में नहीं बन रही है। मेरे सामने तो स्थिति पहले भी स्पष्ट थी, अब भी है।

मैं सोचता था, मैं वहाँ से हट गया हूँ, शायद माहौल में बदलाव आ जाये। सज्जो की तरफ से इतना भर आया कि वह मेरे प्रति नम्र हो गई। पिताजी का वही ढर्रा है—ऐसा माँ ने लिखा। जिक्र भी था कि इधर बीमार रहने लगे हैं।

दो छुट्टियाँ थीं, तीन और लेकर वहाँ गया। सबको खुशी हुई। पिताजी भी पिघले-से लगे। लेकिन यह पिघलाहट दो दिन बाद फिर गुम हो गई। मेरे पर इतनी मेहरबानी रही कि झिड़का-डाँटा नहीं। बाकी माँ

था सज्जो के लिए वही माहौल था।

पहले दिन घंटे-भर अपने पास बैठाया था। शहर के बारे में, नौकरी के बारे में, तनख्वाह के बारे में, खाने का क्या इंतजाम है इसके बारे में पूछ-ताछ कर ली थी। कुछ ताकीद और राय दे दी थी। यह भी कि तुम वहाँ आज़ाद हो, पैसा हाथ में है, बिगड़ मत जाना। सोहबत आदमी को बनाती है, वही डुबा देती है। इस कही का ध्यान रखना। पूछा था—सिगरेट, शराब तो मुँह से नहीं लगा ली? जिन्दगीभर पछताओगे अगर वैसा कर लिया। अन्तिम महत्त्वपूर्ण ताकीद थी—जवान हो। शहर की लड़कियाँ बड़ी बिगड़ी और वाहियात किस्म की होती हैं, उनके चक्कर में मत आना।

फिर आप्त वाक्य की तरह कहा—वैसे करोगे तो वही, जो तुम्हारी मर्ज़ी होगी। वहाँ कौन मैं हूँ जो तुम्हारे कर्म जान सकूँ?

बस, जैसे पिता होने का उत्तरदायित्व खत्म हो गया।

मैं कभी-कभी यह भी सोचता हूँ कि क्या मैंने कभी उनके साथ ऐसा अनादरपूर्ण व्यवहार किया, जिससे वह मेरे प्रति उदासीन हुए? ऐसा स्पष्ट याद नहीं आता। यूँ उनके मुताबिक मैं क्या, कोई भी दूसरा बेटा होता, हर्गिज़ नहीं चल पाता।

सज्जो क्या उनके मुताबिक चलती है? कतई नहीं। बल्कि मुझसे ज्यादा वह मनमानी करती रही, पर पिताजी सहते रहे। आज भी उसकी मर्ज़ी में कम दखल दे पाते हैं। लेकिन ऐसी कोई शिकायत भी नहीं रखते मन में, जिससे उनका असंतोष जाहिर हो। माँ तो जैसे शिकायतों की खान है उनके लिए। दोनों में दरारें बढ़ती जा रही हैं। बस एक नुक्ता पता नहीं कैसे कमज़ोर है। जब माँ बहुत भर जायेंगी, और किसी बात को लेकर अड़ेंगी, तब फनफनाएँगे जरूर, लेकिन अन्त होगा इस वाक्य के साथ—मेरी तरफ़ से भाड़ में पड़ो। आज तक मेरे कहे में रही हो, जो अब रहोगी?

जबकि मैं साक्षी हूँ कि माँ निन्नानवे दशमलव नौ प्रतिशत उनके कहने में रहती है।

मुझे डॉक्टर असर्फीलाल का ध्यान, पिता के साथ आता है। वह

कितने बेबाक हों गृहस्थी से—स्वामी-महन्तो के चक्कर में हों—लेकिन उनका भी घर पर पूरा आतंक है। वह जितनी देर घर में रहते हैं, सब दबे-दबे-से, सहमे-से रहते हैं। जैसे ही घर से बाहर गये सब ऐसे आजाद हो उठते हैं, जैसे घर का क्षेत्रफल बड गया हो। आँगन, कमरे, रसोई, छत दुगुनी लम्बी-चौड़ी हो गई हों।

मैंने अनिल की पार्टी में उसके मम्मी और डैडी दोनों को देखा था। हम जवानों के सामने वे पी भी रहे थे, नाचे भी थे। ऐसे चिपके-चिपके एक-दूसरे का हाथ मे हाथ लिये फिर रहे थे कि दो देह, एक जान हो। लेकिन अनिल की जब-तब की बातो से जाहिर होता था कि वह एक प्रदर्शन है। मम्मी अगर डैडी की इच्छा के खिलाफ जरा-सा भी जायें तो वह तिलमिला पड़ते हैं। अक्सर होता है कि झगड़े के बाद कितने दिनों बोल-चाल तक बद रहती है। फिर मम्मी किसी बहाने से झगड़ा निवटाती हैं। अनिल तो खुले कहता है कि मेरे पापा की क्रेज और कमजोरी औरत का जिस्म रही है। मम्मी के पास इस उम्र मे भी वही हथियार है, उनको झुकाने का।

क़रीब-करीब इसी उम्र का एक शख्स और है जिसे मैंने अवतरमानी के सम्पर्क में आने से जाना है। वह उसका पिता है। बडा खूंखार और वहशी किस्म का। अवतरमानी से मैंने पूछा था—यह ऐसे कैसे हैं? उसने बताया था हमेशा से ऐसे हैं। सिर्फ मुझसे डरते हैं। मेरे भाई-भाभी इनके इसी क्लेश से परेशान होकर चले गये। वे कभी नही आते। जिन्दगी में कमाया भी। जुए और सट्टे में उतना ही उडाते रहे। दूकान खासी चलती थी—पैंदे से बैठ गई। मौका लगता है तो अब भी नम्बर लगाने पहुँच जाते हैं। माँ जिन्दगी-भर पिटी है इनसे। अब भी हाथ छोड़ देते हैं। मैं फटकारती हूँ तो चुपचाप सुनते रहते हैं।

अवतरमानी ने बताया सैंकड़ो बार घर छोड़ने के लिए निकले, मैंने भी नही रोका, लेकिन पाया, शाम को मौजूद हैं। कमाई हुई रोटी जो मिलती है!

कहाँ पिताजी की बात कह रहा था, कहाँ अधेड़ों और बूढ़ों की यह झाँकी उभर आई आँखो मे। और भी हैं जो जानकारी में हैं। लेकिन वे

अनुभव-नगर के बाशिंदे हैं। वह नगर विविधता और किस्म-किस्म की उम्र के चरित्रों का हलचल भरा क्षेत्र है।

माँ कहती है, मैंने टोकना-कहना छोड़ दिया। क्या फ़ायदा! कहूँ क्यों और फिर जवाब खाऊँ क्यों? जब से कॉलेज जाने लगी है, और आज़ाद हो गई है। घर से मतलब नहीं, चाहे मैं काम में मरती-पिसती रहूँ। ऊपर से सहेलियों का आना और शुरू हो गया। उनकी सेवा बजाओ।

तुम्हारे पिता ऐसे कौन-सा हज़ारों कमाते हैं जो खर्च बढ़ा लें, कमी पड़े नहीं। वह सोचती है सहेलियों का मुकाबला करे। बाप भी तनकर कहते हैं कॉलेज में क्या उसकी हेटी करवाऊँ? तुमने कभी स्कूल का मुँह देखा हो तो जानो।

अब बुढ़ापे में पढ़ाई के ताने सुनो। खुद ने तो जैसे पढ़कर कलक्टरी पा ली थी। बाबूगीरी से शुरू हुए, रिगस-रिगसकर उसी में घिस गये। जब शादी का वक्त आएगा तब तारे दीखेंगे। लड़केवाले कितना मुँह फाड़ते हैं, इसका होश अभी नहीं है।

सज्जो ने अपनी तरह से अपने मलाल मेरे सामने रखे—

भैय्या, मैं सच में ऊब गई। माँ सोचती है कॉलेज क्या जाने लग गई, मुझे स्वर्ग मिल गया। मैं आज रोक दूं। तब क्या करूँ? घर में सड़ूँ। इस दमघोट माहौल में खीझती रहूँ, सिर टकराती रहूँ। वही माँ और वही पिता। फिर घर की किचकिच। रहूँ तो उसका हिस्सा बनूँ। बाहर निकलकर दूसरी-सी तो हो जाती हूँ।

मैं क्या यह सोचती हूँ कि शादी होने के बाद तकदीर सोने की कलम से लिख जायेगी?

बस यह होगा कि यहाँ की किचकिच से हटूँगी, दूसरी दलदल में फँसूँगी। हम बीच के घर की लड़कियों का भाग्य इतना ही होना है ना!

सज्जो ने एक बात बड़ी अजीब तरह से कही—वह मेरी धारणा की ही पुष्टि थी—

भैय्या, तुम मुझे बदतमीज़ कह सकते हो, स्वार्थी कह सकते हो, लेकिन सच तो सच रहेगा।

मैं जानती हूँ पिताजी मेरी क्यों मानते हैं, तुम्हें क्यों ठड़ापन देते हैं।

उनका मोह कहीं ललचाहट भी है। वह कैसी ललचाहट है, उसे बस मैं महसूस कर सकती हूँ, कह नहीं सकती। बेटी हूँ इसलिये···

बुढ़ापे की वह कौन-सी भूख है ? सज्जो ने मुझसे सवाल किया।

इसके क्या मतलब ? मैं चौंक पड़ा।

ग़लत मत समझो। चौंको नहीं। पिताजी इतने गिरे हुए नहीं हैं। बेटी का प्यार भी है उनके पास। पर न जाने वह कैसा लालच है जो उनकी आँखें कहती हैं।

मेरे सामने कभी वह ऐसे व्यवहार करने लगते हैं, जैसे कॉलेज के छिछोरे लड़के।

मेरी खूबसूरती से वह किस तरह की तृप्ति लेते हैं, मैं समझती हूँ। समझकर भी उलझ जाती हूँ।

क्या करते हैं ? मैंने पूछा। जैसे मेरा कोई सदेह, सबूत चाह रहा हो।

मैं क्या बताऊँ ? कैसे बताऊँ ? वह सिर्फ महसूस करने की बात है। जैसे···जैसे कोई बूढ़ा अपनी उम्र का खयाल न करके किसी खूबसूरत लड़की के सामने···

सज्जो कह नहीं पाई। उसके पास न व्याख्या थी न वह शब्द जिनसे वह यह बता सके लाड और चाह, या चाह और चाह में कितने कैरट सात्विकता है कितने कैरट मुलम्मा।

क्या कोई भी जान सकता है ?

नरेश दूसरी कम्पनी में चला गया। इसके मतलब हैं वह छूट गया। दूरियाँ पास हुई हैं, लेकिन व्यक्तिगत फ़ासले कितने छोटे हो गये। हम जब ऐसे सेक्शन में थे जब साथ रहने का मौका था तथा नरेश, जाकिर, अनिल रोज़ मिल लेते थे। मेरा सेक्शन बदला तो अवतरमानी और इस सेक्शन के लोग नजदीक हो गये। इन लोगों से चार-पाँच दिन में मिलना हो गया। फ़र्क बड़ी इमारत का था। पहले एक तरफ के ब्लॉक में थे, कैण्टीन और पान की दूकानें उत्तर की तरफ वाली थीं। दूसरे ब्लॉक की ... ...न में थी—दुकानें दक्षिण में थी। लंच में कौन चक्कर काटकर ... आने की तकलीफ उठाता !

अब जब नरेश ने कम्पनी छोड दी, क्या ताज्जुब महीनों बाद मिलें, या धीरे-धीरे मिलना बन्द हो जाये !

दोस्ती भी जैसे महज सुविधा हो। नजदीकी अपने-पन की भी जैसे मुँह-देखी की हो। बहाना व्यस्तता का है या वक्त की कमी का।

जाकिर और अनिल अचानक मिल जायें तो बात हो जाये, वरना पूरक दूसरे है ही। हो सकता है कही दिल मे खाँचा आया हो। कभी कहा नही उन्होने, न वैसा दर्शाया। सच यह है कि मुझे भी उनका औपचारिक होना अखरता नहीं।

उस दिन मैं कुछ खरीद-फ़रोख्त करने पलटन बाजार में घूम रहा था, जाकिर मिल गया। उसके साथ दो औरतें थी, एक लडकी जिसकी उम्र करीब बीस-इक्कीस की होगी। दोनों औरतें बुर्का पहने थी, मगर चहरे की पट्टी ऊपर थी। लड़की कुर्ते-शलवार और चुन्नी में थी।

मैंने उनको देखकर कतराना चाहा, लेकिन शायद जाकिर मुझे देख चुका था। वह उन्हे छोडकर मेरे पास आया—कहाँ घूम रहा है ?

यूँ ही, कुछ खरीदना था।

चल तुझे किसी से मिलवाऊँ। उसने कहा।

किससे ? मैंने जानकर उन्हें न देखने जैसा दर्शाया।

चल तो ! वह लगभग बाँह पकड़कर ले गया। फिर उनके सामने ले-जाकर खडा कर दिया।

यह मेरी भाभी है। यह भाभी की भाभी। यह भाभी की ननद। यानी मेरे भाई साहब की साली। जिसे साली बताया था, वह शलवार कुर्ता पहने थी। यह हैदराबाद से आई हैं।

मैंने शिष्टाचार मे नमस्ते की। दोनों ने गर्दन हिलाकर स्वीकार किया। शलवार-कुर्ते वाली लड़की ने हाथ जोडे। अच्छी थी। लम्बी, चिट्टा रंग।

फिर जाकिर ने कहा—चलो।

मैं बँधा-सा साथ-साथ चलने लगा। वे तीनों मेरे पीछे-पीछे चलने लगीं।

डियर, हम भी अब कुछ दिन के मेहमान हैं, इस कम्पनी मे। जाकिर

ने कहा।

क्यों?

बस। हिन्दुस्तान का दाना-पानी उठ गया।

मैं समझा नहीं?

वह जो शलवार-कुर्ता पहने है, वह हिना है। पसन्द आई?

मुझसे क्यों पूछ रहा है। मैंने उसको देखा।

मेरा उससे निकाह होने जा रहा है।

बधाई! वास्तव में हिना है। और तुम भी खुश दीख रहे हो।

ज़बरदस्त पार्टी है। सऊदी अरब में कारोबार है।

तब तो काफ़ी माल मारेगा।

मैं शादी के बाद वहीं जाऊँगा। ससुर साहब चाहते हैं उनके कारोबार को देखूं।

बधाई! फिर हिन्दुस्तान क्यों अच्छा लगने लगा? मैंने व्यंग्य किया।

यार देश का क्या अच्छा क्या बुरा। जहाँ कमाई बढ़िया हो, जिन्दगी शानो-शौकत से कटे, वहीं देश अच्छा।

उसने पलटकर देखा वे लोग ज्यादा पीछे तो नहीं हैं। वे आपस में बात करती, दुकानों पर नजर घुमाती आ रही थीं।

ज़ाकिर, एक बात बताओगे! क्या तुम्हें यह भी खुशी है कि मुसलिम देश में जा रहे हो।

नहीं। वहाँ भी उसी परायेपन का अहसास होगा, जैसा यहाँ होता था। हालांकि मैंने हिन्दू, मुसलमान, सरदार, ईसाई जैसा फ़र्क ऊपरी तौर पर कभी नहीं माना, लेकिन बहुत गहरे हमेशा यह महसूस होता रहा जैसे यहाँ का होकर भी कहीं और का हूँ। ज़ाकिर स्पष्ट कह रहा था।

कहाँ का? मैंने सवाल किया।

वह रुका। अरे, मालूम पड़ता है वो लोग किसी दूकान में घुस गईं।

हम ठहर गये। ज़रा देख आऊँ। वह पीछे गया। फिर एक दूकान के सामने खड़ा कर, मुझे इशारे से बुलाया।

औरतों के साथ यही जंजाल है। आज सुबह से पीछे पड़ी थीं घुमाना होगा! घुमाना होगा!

जजाल मे तो फँस रहा है । कब शादी होगी ? मैंने पूछा ।

तय करने आई हैं । और लडकी को दिखाने कि मैं फ़ाइनल रजामंदी दे दूं ।

हिना से पूछा, तुम भी उसे पसन्द हो या नही ? मैंने चुटकी ली।

पूछा था । यह भी पूछा था कि तुम अरब जाना चाहती हो ?

क्या जवाब दिया ?

पसन्दगी के मामले मे चुप रही । सऊदी अरब जाने में वह घूमने के पक्ष मे है लेकिन वहाँ बसने के पक्ष में नही ।

तुमसे ज्यादा नमकहलाल वह है । मेरे मुँह से अचानक निकल गया। मुझे लगा कि मुझे नमकहलाल या नमकहराम की शब्दावली इस्तेमाल नही करनी चाहिये थी । वाकई जाकिर का चेहरा सुस्त हो गया।

लेकिन एक योग्यता मे हम सब कमाल के अभ्यस्त हैं—किसी भाव पर दूसरे को तुरत चढाने में।

उसने उस घात को छिपाया; बोला—सच बात तल्ख होती है शशि, लेकिन सचाई भी उँगली उठवाकर मनवाती है । तुमने हिना को नमक-हलाल कहकर शायद मुझे नमकहराम कहना चाहा । लेकिन तुम या कोई भी हिन्दू छाती पर हाथ रखकर कह सकता है कि वह हम पर पूरी तरह से एतकाद करता है ? दिल के अंदर किसी कीड़े की तरह शक रेंगता है । हमारे में । तुम्हारे मे । जाकिर ने कहते-कहते दूकान की तरफ देखा।

यह सामान खरीद रही हैं, या दूकान ? औरत को मौका मिलना चाहिये—और हाथ मे हो नोट, तब देखो कैसे ख्वाहिशों के पख फड़फड़ाती हैं !

और हम आदमी ? शायद हमारे में तो ख्वाहिशें होती ही नही । मैंने उसे काटा ।

उसने जवाब में तुरत-फुरत मुझे समेट दिया—तू रहने दे यार, तू तो पक्का औरतपूजक सम्प्रदाय का है । अरे, उस अवतरमानी का क्या हाल है—कहाँ तक पहुँचे ?

मैं इस मामले मे बेशर्म बन चुका हूँ । जहाँ तक समझो, वहाँ तक पहुँच चुका । मैंने दो टूक कहा जैसे इस अध्याय के पाठ को रोकने का गुर

हाथ लग गया हो ।

अब वे लोग दूकान से निकल आई थीं । हिना के हाथ में दो डिब्बे थे।

अभी तो खरीद की शुरूआत है शायद ? जाकिर ने छेड़ा।

जब तुम्हारे लिए खरीदेंगे तो तुम्हारी राय लेंगे । एक से तो निबटने दो! भाभी की भाभी बोली थीं।

देखो जी ; भोले कितने बनते हैं ! यह जाकिर की भाभी ने कहा। हिना शर्मा रही थी ।

मैं चलूं । मैंने उनसे अलग होना चाहा । ऐसा महसूस हो रहा था कि मैं उन लोगों के बीच में नाहक अटका था ।

जल्दी है क्या ? काहे की जल्दी है ! जाकिर ने अपने-आप सवाल किया, अपने-आप जवाब दे दिया ।

रुकिये भाई जान ! जाकिर साहब को आपका सहारा मिल रहा है। जाकिर की भाभी ने चुटकी ली।

मैं क्या बोलता ! खामख्वाह की अटकल बन गया था ।

अब हम फिर आगे चल रहे थे ।

लगता है शादी चट-मंगनी पट-ब्याह वाली होगी ।

होगा तो ऐसा ही । ये लोग हैदराबाद बुलाकर वहीं से शादी करना चाहते हैं ।

चाहते हैं अपनी हैसियत के मुताबिक करें । मैंने साफ कह दिया, अपनी हैसियत के मुताबिक करनी है तो दोतरफा खर्चा सही। हम तो नौकरी-पेशा हैं । हमारी हैसियत औसत है । पार्टी दमदार है—इनके क्या फर्क पड़ना !

और जाकिर को फिर जैसे टूटा सूत्र याद आया । दाेरि, हमारी किस्मत में हर जगह परायापन है। चाहे जहाँ हो। यहाँ भी दूसरे। पाकिस्तान के रिश्तेदार तक रिश्ता मानते हैं, लेकिन गिनते हैं पराया। अरब में तो अजनबी होना होगा। इसलिए सीधी एक बात है । जिन्दगी कहीं भी कटे, अगर शान और मस्ती से कटे तो वाह-वाह ।

इस वाह-वाह में ससुराल की मालदारी का स्वर था जो

निकल रहा था।

असलियत बहुत बे-पर्दा थी कि साधारण क्लर्क को लड़की भी मिल रही थी और ऐसी जिसकी उसने कल्पना भी नही की थी। इसलिये न देश कोई चीज थी, न वो माँ-बाप, भाई-बहिन जिन्हें यहाँ छोड़कर जा रहा था। हिना के लिए वह सम्पन्नता स्वाभाविक माहौल था इसलिये उनके लिए अरब सिर्फ घूमने का आकर्षण रखता था। जाकिर अवतरमानी को फ्लर्ट कह सकता है—कुछ भी कह सकता है, पर अपने को वह बिकाऊ नही कहना चाहेगा। उसके पास तर्क हैं जैसे हर उस शख्स के पास होते हैं जो अपनी गिरावट को सिद्धान्त बताता है और समझौते को आत्मा का अर्क मानता है।

मैं जब उनसे अलग होकर घर आया तब तक जाकिर का प्रकरण इस तरह से दिमाग से हट गया जैसे मैंने खबर पढ़ी हो। जहाँ किसी चयन में, वह भी जिन्दगी के साथ के चयन मे, सहज उपभोक्ता या भोगता का समर्पण हो वह बेअसर, अनछुआ रहे तो खास बात नहीं।

मिस अवतरमानी ने पूछा—आज कहीं जाना तो नही है तुम्हें?

क्यो? मैंने पूछा।

मुझे घर लेट जाना है। चाहती हूँ तुम साथ रहो शाम को।

खास बात?

ऐसा समझ लो। इसमे भी हर्ज नहीं है।

ठीक है। मैंने हाँ कर दी। फिर हम अपने काम में लग गये।

पौने पाँच बजे उसने सीट तक आकर फिर याद दिलाया—अपन लोगों को चलना है।

भूला नही हूँ। मैंने कहा।

यह फाइल-वाइल समेटो ना! जैसे उतावली हो।

दस मिनट और। कागज पूरे करके बॉस के पास भिजवा दूँ।

वह मिसेज डोगरा की सीट पर चली गई, उनसे बात करती रही। पाँच बजने में पाँच मिनट रह गये तब मैंने कागज बॉस के पास भिजवाये। उसके बाद जरूरी कागजात और फ़ाइलें अलमारी में रखीं।

ताला लगाकर निश्चिन्त हुआ। मिसेज डोगरा की सीट देखी, न वह थी, न अवतरमानी। डोगरा के साथ शायद निकल गई।

मैं सड़क तक आया, तो देखा अभी तक डोगरा से गप्पें चल रही थी। मैंने पहुँचकर कहा—दो औरतें साथ हों तो पूरा एक ग्रंथ बोलती हैं।

दो आदमी हों तब, शायद गूँगेपने की प्रतियोगिता कहते हैं। डोगरा बोली—मिस्टर, औरतें हमेशा काम की बातें करती हैं। आदमी अस्सी प्रतिशत फालतू बातें करते हैं। डोगरा ने अपने कथन को काफी न जानकर उसमें परिशिष्ट लगाया।

यह तो आते नहीं दीखते, ऑटो में जाना होगा।

सवारी रास्ते में मिल गई होगी। आप नहीं तो दूसरी सही। मैंने छेड़ा उन्हें।

रहने दो। मेरे हस्बैंड आवारा नहीं है जो दूसरी को घुमाते फिरें।

मैंने समझा यह मुझ पर ताना मारा है। लेकिन नहीं, उन्होंने आदत के मुताबिक अपने पति की तारीफ की थी। वह मुश्किल से तीस कदम बढ़ी होंगी कि उनके साहब पीं-पीं करते स्कूटर ले आए। हम लोगों ने दूसरी तरफ जाने का रुख कर लिया था, इसलिये उनसे बच गये। लेकिन मिसेज डोगरा अपनी जगह से खड़ी खड़ी बोलीं—देख लो, आ गये ना, मैं कह रही थी दुनिया इधर-की-उधर हो जाये वह नहीं चूक सकते।

डोगरा शो कितनी करती है। मैंने अवतरमानी से कहा।

जो अन्दर से जितना खोखला होता है, उतना ही दिखावा करता है। अवतरमानी ने कहा। फिर उसने टिप्पणी का उप-भाग जोड़ा—आदमी भी तो हुकुम का गुलाम है।

मैंने पूछा—कहाँ चलना है?

कहीं भी चलो। फिर सोचकर बोली—पार्क में चलो, वहीं बैठेंगे। फिर।

पहले एक कार्यक्रम तो पूरा होने दो। क्या समझते हो, मैं समय-विभाजन-चक्र बनाकर बैठी हूँ।

शहर से काफ़ी बाहर पार्क है—जुड़ा हुआ, पर अलग-सा। उसके फैलाव में ऐसे-ऐसे हरी घास के टुकड़े हैं जो जुड़े हैं, पर एकांत हैं। वृक्षों

की कतार हैं, जिनके मोटे-पतले तने हैं—खुरदरी छालवाले। ऊपर वो शाखाओं और पत्तों से घने हैं।

हम एक अकेले हिस्से में आकर बैठ गये। अवतरमानी और मैं पार्क के वातावरण को अपनी-अपनी तरह से देख रहे थे। मैं पहली बार आया था। सुखद लग रही थी शान्ति।

मुझे बहुत अच्छा लगता है यह पार्क। अवतरमानी ने कहा। पर आना होता है, महीनों में कभी। लेकिन अकेली कभी नहीं आई।

याद कर सकती हो उससे पहले कब आईं, किसके साथ आईं। मैंने यूँ ही पूछा। लेकिन शायद अन्दर कोई सदेही, उत्सुक पुरुष था। वह जानना चाह रहा था दूसरा कौन था? कौन था जो तुम्हारे कहने को मेरी तरह टाल नहीं सकता था।

नहीं। मैं याद नहीं रखती। फिर भी शायद पाँच-छः महीने या इससे भी ज्यादा हुए होंगे। इतना वक्त कब होता है जो जल्दी-जल्दी आ सकें। आएँ तो यह उबाने लगेगा।

हाँ। ठीक कह रही हो।

मैं ठीक ही कहती हूँ। दरअसल हम तनावों के भी उतने ही अभ्यस्त हो गये हैं जितने छोटी-छोटी राहतों के।

कभी-कभी जिन्दगी बुरी तरह घिसी लगती है। मैंने कहा। फिर यकायक मुझे ज़ाकिर से मिलना याद आया। तुम अपने दफ़्तर के ज़ाकिर को जानती हो? मैंने पूछा।

हाँ, सिर्फ पहचानती हूँ, कभी ज्यादा मौका नहीं मिला।

वह मेरा दोस्त है—अब था कहना उचित होगा।

अवतरमानी हँसी। 'था' और 'है' में फर्क नहीं कर पाते?

कभी-कभी जुड़वाँ लगते हैं जैसे नाल तक नहीं कटी हो। मैंने कहा।

क्वारे होकर काफ़ी अनुभव है। उसने व्यंग्य किया।

यह ज्ञान है। फिर चिंतन।

मेरा इतना कहना था कि उसने चु-चु कर इस तरह से गर्दन हिलाई जैसे मुझ से सहानुभूति दिखा रही है। बोली—ऐसे शब्द बोलते हो! इनका भार उबाता नहीं?

मैं ज़ाकिर के बारे में बता रहा था।

बता लो। उसने उदासीन भाव से कहा कि बताने की मजबूरी मेरी है उसमें सुनने की खास इच्छा नहीं है।

और वास्तव में उस पल की मेरी मजबूरी थी क्योंकि ज़ाकिर याद आया था।

मैंने सुनाया—उन जनाब को कीमती बीबी और मालदार ससुराल हाथ लग गई। वह सऊदी अरब जा रहा है। कारोबारी होंगे।

बढ़िया है। मिले तो कौन छोड़े। हज़ारों जाते हैं। उसने कैसी भी प्रतिक्रिया नहीं ज़ाहिर की।

यह साफ़-साफ़ बिकना है। मैंने अपना मत बताया।

तुम्हारे लिहाज़ से। ज़ाकिर के हिसाब से उसके सामने सोने का थाला पड़ा, उसने जेब के हवाले कर लिया। बिकने और खरीदने का सौदा कौन नहीं करता और क्यों नहीं करे?

तब तुम क्यों नहीं करतीं? झगड़ालू बाप और परवश माँ से अलग क्यों नहीं हो जातीं। मैंने अबतरमानी से सवाल किया, क्योंकि मुझे उसकी खरीद-फ़रोख्त की स्थापना ज़िन्दगी के लिये अच्छी नहीं लगी।

मुझे क्यों जानते हो। और क्या पता मैं अकेली नहीं रह सकती, इसलिये उनके साथ हूँ। क्या पता इसलिये हूँ कि उनके रहने से मुझे बेफ़िक्री है। वरना यह बताओ, जानकर परेशानी में कौन रहेगा? यह सुरक्षा और आराम भी तो तनख्वाह के बूते पर खरीदे हैं।

नहीं, तुम सिर्फ़ बात के लिये बात कह रही हो। तुमने कहीं फ़र्ज़ बोधा है। तुम्हारा अपना मोह है, अपनी माँ से, बाप से।

ऐसा समझ लो। मुझे किसी तरह से ऐतराज़ नहीं है। कबावरमानो ऐसे बोल रही थी, जैसे मुझे खेल खिला रही हो।

हम यहाँ क्यों आए हैं?

इधर-उधर टहलते क्यों हो। तुम अन्दर से फ़ौरन बेचैन हो जाते हो—यह तुम्हारी कमी है।

मैं ज़्यादातर रहता हूँ। मैंने स्वीकार किया।

क्यों?

मुझसे गलत और अन्याय सहा नहीं जाता। मैं शायद कुछ आवेश में हो गया।

ठेका ले रखा है? खता खाओगे। अपनी लड़ाई लड़ो, नहीं तो असफलताओं का मुंह देखना होगा। वह तुम्हें पीट कर बदशक्ल बना देगी। अपाहिज हो जाओगे अन्दर से।

मेरी-तुम्हारी हालत में काफी समता है। मेरे पिता भी तुम्हारे पिता की तरह हैं—माँ पर अन्याय करने वाले। मेरी माँ भी उसी तरह से उनकी ज्यादती सहती हैं, जैसे तुम्हारी माँ। बस मेरी एक क्वारी बहन है जो एक तरह से मेरी जिम्मेदारी है।

अवतरमानी चुप रही। जैसे और कहीं खो गई। वह आसमान और दरख्तों को देख रही थी।

क्या सोच रही हो? क्या देख रही हो। मैंने उसका ध्यान खींचा।

तुम दूसरों को हर वक्त क्यों ढोते हो। अपने से भी कभी मिला करो। मैं यहाँ इसी मूड में आई हूँ।

मैं खामोश हूँ। *लो मैं लेटकर आराम करता हूँ।* तुम माहौल में खोओ। मैं सच में लेट गया। वह दो मिनट भी वैसी अलग-सी नहीं रह सकती।

तुम बिलकुल चुप हो गये। इससे तो अन्दर का सूनापन हावी होता है। वह ज्यादा दहलाता है। अवतरमानी मेरी तरफ घूमी।

उठकर बैठो। लोटने से कशिश खींचती है।

मैं उठा नहीं। वह मुझे थोड़ी देर तक देखती रही। फिर आँखें मिलाते हुए तेज आवाज में बोल पड़ी—उठकर बैठते क्यों नहीं, जब मैं कह रही हूँ। तुम जानते नहीं मुझे आदमी के उस मासूमपने से नफरत है जो उसमें तब उभरता है, जब वह औरत को हिलाना चाहता है। वह उसका सब से ज्यादा धोखा फैलाने वाला नाटकपन होता है। वरना वह दरिंदा है। मेरे बाप की तरह।

मैं खटाक से उठकर बैठ गया जैसे बिजली का झटका खाया हो।

हाँ, अब ठीक है।

उठो यहाँ से। जैसे मुझ में विरोध जाग उठा हो।

क्यों, क्या बुरा लग गया। आइ एम सॉरी। वह फौरन नम्र हो गई।

नही। अब मैं नही रुकूंगा। तुम इस तरह बर्ताव करती हो जैसे मैं तुम्हारे···मैं खड़ा हो गया।

यही असली आदमी है। ज़रा-सी भी अहम पर चोट लगी फन फैला दिये। किसी की कमज़ोरी के लिए जगह नही, किसी की मज़बूती बर्दाश्त नहीं।

अवतरमानी बैठी रही। उठी नही। मैं अभी भी खड़ा था।

बैठ जाओ, सॉरी कह तो दिया। उसने आग्रह से कहा।

मैं बैठ गया। लेकिन मैं अब यह सोच रहा था कि क्या मेरा दूसरों के प्रति सहानुभूति रखना, उनके कब्ज़े में होना है। क्या मैं कहीं किसी हिस्से में कमज़ोर हूं कि दूसरा अपनी चाह करवाता है, मैं इन्कार नहीं कर पाता।

अवतरमानी ने मुझे खामोश पाया तो बोली—मेरे खिलाफ सोचने की कोशिश कर रहे हो। शशि, क्या तुम चाहोगे कि जो तुम नही चाहते हो उसे कोई कमज़ोर डालकर करवा ले ?

मैं चुप रहा। मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लग रही थीं। मन खिन्न हो चुका था।

अपनी चाह के विरुद्ध किसी परिस्थिति विशेष में आदमी कुछ कर गुज़रता है तो बाद मे उसे पछतावा होता है। वह करनेवाले, करवाने वाले के हक में नही होता।

अब चलो। मैं ऊबने लगा था।

मैं इसीलिये बदनाम हूँ कि लाग-लपेट नहीं रखती। तुम हद से ज्यादा छुई मुई हो। अच्छाइयों का इतना भारी बोझ ढोना चाहते हो, जिसे न तुम सम्भाल सको और न आज का यह निहायत लेन-देनी वक्त।

क्या कहना चाहती हो ? मैं अब चलना चाहता हूँ।

मैं भी। लेकिन तुम जो मुझसे नाहक नाराज़ हो गये, उसे सामान्य किये बग़ैर नही चलूंगी। मैं तुमसे सिर्फ दोस्ती चाहती हूँ। हाँ—बहुत लगाव की दोस्ती। लेकिन ऐसे किसी क्षण को बीच में नही आने देना चाहती जो देह का लेन-देन बने या तृप्ति। मुझे नफ़रत है इस रिश्ते से।

मैंने कब चाहा ? मुझे लगा उसकी तरफ़ से मुझ पर चेतावनी लादी जा रही है।

तुमने नहीं चाहा। मैंने भी नहीं चाहा। लेकिन बताना जरूरी है। तुम अपनी लडाइयों में मेरा साथ ले सकते हो, मैं तुम्हारा चाहती हूँ। हम जहाँ बिल्कुल अकेले और घोर सूनेपन में हैं, वहीं, उसी के लिए, किसी अपने की जरूरत पडती है। और यह तब नहीं हो सकता जब तुम उस पुरुष को कायम रखो, जो आदतन फन फैलाकर फुफकारता है। मैं यह अधिकार दे नहीं सकती—लेना भी नहीं चाहती। शशि, मुझे तुम्हारी ज़रूरत है। मैं मानती हूँ, तुमने पिछले दिनों में इतना सबूत दिया है कि मैं यह माँग कर सकती हूँ। अब चाहे जो सोचो।

वह कपडे झाडती हुई खडी हो गई।

पर मेरी इच्छा हो रही थी कि थोडी देर और बैठें। आपसी टकराव में पार्क का वह प्रभाव जो गुम-सा हो गया था, उसे फिर पा लें।

लेकिन मैं खडा हो गया। हम वहाँ से चल दिये। अवतरमानी फिर सहज हो गई। बाजार के बीच गुज़रते हुए उसकी शोर और रफ़्तार वाली बेलिहाज़ ज़िन्दगी का दखल पडना लाजिमी था।

लेकिन वह कैसी यात्रा होती है जहाँ हमारे सूनेपन एक-दूसरे को पहचानते हैं और देन-देन करते हैं।

उस दिन की अवतरमानी की बातचीत काफी दिनों तक मेरे दिमाग में मंडराती रही। मैं यह भी मान सकता हूँ, बावजूद इतनी बदनामी के वह मुझे इतनी मज़बूत लगी कि दूसरों की धारणाएँ धूल से ज्यादा नहीं थीं। वह अगर उनको झाड़कर अपने व्यक्तित्व में ऐसा असर बनाये रखती थी कि पीठ-पीछे खुसर-पुसर करनेवाले कतरायें या उसकी मानें तो ऐसे लोगों के हिस्से में यही पड़ना था।

लेकिन वह पुरुषों से इतनी नफरत क्यों रखती थी ?

मुझे यही लगा उसकी नफरत आदमी के बराबर होने का दावा थी।

मेरे सामने जिस तरह की दोस्ती की उसने शर्त रखी थी वह सहज-साध्य नहीं थी। पर मैं उसे छिटका भी नहीं सकता था। उससे भाग भी

था। ऐसा महसूस हो रहा था जैसे वह लीडरी के अहम् से बोल रहा है। बाद में लगा वह चाहता है मैं उस सिलसिले से गुज़रूँ जिसका अन्त सीधा कार्य-क्षेत्र है।

यह मेरा अपना सोचना हो सकता है कि वह मुझे रोमान्तिक युवक गिन रहा हो। नेतृत्व की इच्छा रखनेवाला, लेकिन कच्चा और कमज़ोर। उसे निश्चित रूप से पता होगा मेरे और अवतरमानी के सम्बन्ध का।

क्या वह भी दूसरों की तरह अवतरमानी को सोचता है?

लेकिन मुझे पता है अवतरमानी के परिचय और उसके असर का वह कायल है। एक दिन अवतरमानी ने उसके बारे मे राय दी थी—वह वास्तव मे जीवट वाला है। उसने जब भी मेरा सहयोग चाहा है, मैंने दिया है।

क्या तुम भी ऐसे कामों मे रुचि रखती हो? मैंने पूछा था।

अवतरमानी ने चिट्टा जवाब दिया था—मेरा यूनियनबाजी में कतई विश्वास नही है। बस वक्त पर उसका कहा कर देती हूँ।

मैं अपने को टटोलता हूँ। लगता है वैसा कुछ करना चाहता हूँ, पर शायद अभी अपने मे स्पष्ट नही हूँ।

मेरा किराये का कमरा और गायत्रीजी का घर एक इकाई हो गये। विश्वास धीरे-धीरे अपनेपन की सतह तक उठ आया। डाक्टर साहब का तबादला बाहर हो गया। उन्होने स्थानान्तरण आदेश को बदलवाने की, या निरस्त करवाने की बहुत कोशिश की पर सफलता हाथ नही लगी।

सफलता कीमत और रसूक चाहती है। इतने पुराने होने के बावजूद वह उस तरह की तिकडम मे माहिर नही हो सके जो आज की जरूरत बन गई है। *डायरेक्टर जानता है—हाँ। सेक्शन ऑफीसर जानता है—हाँ। सम्बन्धित क्लर्क जो आपके क्षेत्र का है, आपको जानता है—हाँ।*

सिर्फ जानने से क्या होता है। किसी भी जगह के लिये एक निश्चित रिश्वत है। आपके सिद्धान्त में अड़ती है। काम नही होगा। आप सेक्शन ऑफिसर के किसी ऐसे निकट के रिश्तेदार, या यार को पकड़ सकते हैं, जो आपकी सिफारिश कर सकता है? नही। तो, आपका काम तय है

इसकी वजह यह थी कि वह स्वयं बड़ी खामोश और तटस्थ लड़की है। अपने में सिमटी, बहुत-बहुत सीमित।

अरसे बाद मुझे पता लग पाया कि जत्तो की शादी हुई थी। वह हफ्ते भर ससुराल रही, फिर पति को छोड़ आई। रत्ती ने बताया दीदी बहुत अड़ियल हैं। शादी पर गईं, जीजा जी से लड़कर आ गईं।

उन्होंने बताया, वह किसी लड़की को चाहते हैं। उससे उनके सम्बन्ध हैं। वह छोटी उम्र मे विधवा हो गई थी।

दीदी ने सवाल किया—उससे शादी क्यो नही की।

जीजा जी ने बताया—पिता जी और माता जी बहू मानने को तैयार नही हुए।

माँ-पिता को छोड़ देते। कमाते हैं, अपनी आज़ादी का इस्तेमाल नही कर सकते थे?

पिता जी ने बवंडर उठा दिया। आत्महत्या की धमकी भी दी। मैंने तुम से शादी करने के लिये साफ मना किया, लेकिन वह माने नही। जीजा जी ने सफाई दी।

आप मे वह साहस क्यों नही हुआ कि मुझे बता देते। मैं इन्कार कर देती। दीदी कठोर थी।

मैंने इसीलिये पहली रात तुम्हें बता दिया, तुम्हारे प्रति गैर-ईमानदार नही होना चाहता था। जीजा जी अपने को दीदी के सामने निर्दोष साबित करने की कोशिश कर रहे थे।

यह धोखा है, ईमानदारी नही। सोचा होगा शादी के बाद मैं क्या कर सकूँगी, सिवाय इसके कि भाग्य समझकर स्वीकार कर लूँ। मेरी ऐसी मजबूरी नही है। मैं तुम्हें स्वीकार नही कर सकती। मेरा आखिरी निर्णय है।

दीदी रिश्ता और वास्ता तोड़ कर चली आईं। सब ने समझाने की कोशिश की धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा, लेकिन दीदी टस-से-मस नही हुईं।

मैंने रत्ती से पता लगाना चाहा डाक्टर साहब और गायत्री जी ने कैसे परिस्थितियों का सामना किया।

पड़ी को क्या करते। दीदी ने कह दिया, उस लड़की का हक नहीं छीन सकती। अगर उन्हें ससुराल भेजा गया तो आत्महत्या कर लेंगी।

रिश्तेदारों के बीच में पड़ने से समझौता हुआ। हमने जो दहेज में दिया था, वह उन लोगों ने लौटा दिया। उन्होंने जो जीजी को चढ़ाया था वह हमारी तरफ़ से लौट गया। बदनामी हुई, बातें बनीं।

पहले यह तय हुआ था समझौते के बाद तलाक का सवाल नहीं उठे। लेकिन मम्मी का कहना था—फजीहत हो चुकी, अब हमेशा के लिये काँटा क्यों नहीं निकाल फेंकते। वैसा ही किया गया।

छः माह पहले जत्ती का या दुखांतिक हिस्सा पता लगता, शायद दिल में सहानुभूति प्रकट कर चुप हो जाता। ज्यादा-से-ज्यादा सोच लेता उसने जो किया वह सही था। उसके साहस की मन-ही-मन तारीफ़ कर लेता। सम्भव है मेरी सहानुभूति उस लडकी के प्रति भी होती जिसे जत्ती के ससुराल वाले अपनाने को तैयार नहीं हुए। मुझे निश्चित रूप से उस बाप पर गुस्सा आता जिसने आत्महत्या की धमकी देकर बेटे को मजबूर बनाया। वह बेटा जत्ती से शादी की हामी नहीं भरता तो यह घटना क्यों होती?

क्या यह सिर्फ घटना थी—जत्ती की ज़िन्दगी से क्रूर खिलवाड़ नहीं था?

अब मैं यह मानने लगा हूँ कि जिद करना, मनमानी करवाना इन बूढ़ों के संस्कारों की आदत है। इनका सामना करना हमारी जरूरत है।

जत्ती से मैं अब पूछ सकता हूँ उसका अतीत और कि वह भविष्य के लिये क्या सोचती है। पहले उसकी ख़ामोशी और चेहरे का सूना कठोरपन मुझे आतंकित किये हुए था। यही नहीं सोच पाता था यह कैसी लड़की है—ऐसी क्यों है!

जत्ती अब मुझे पहले सा ग़ैर और किरायेदार लड़का नहीं मानती। मुझे यह भी ताज्जुब रहा कि गायत्री जी गृहस्थी की तमाम बातें करती थीं उन्होंने जत्ती का यह अतीत कभी नहीं बताया। क्या उन्होंने इसे मृतक दुर्घटना मानकर हमेशा के लिये विस्मृति में दबा दिया था।

क्या जत्ती ने भी अपनी जिन्दगी का दुःखद स्वप्न मानकर इसे

से दूर फेंक दिया था ।

मैं जत्ती के अतीत को खोदना नही चाहता था। लेकिन यह जानना चाहता था कि अब वह अपनी ज़िन्दगी के बारे में क्या सोचती है। अभी तो पहाड़-सी आगे पडी है।

मैं नही जानता मुझ मे यह उत्सुकता किसी दर्द की मानिन्द थी या सिर्फ जिज्ञासा-सी थी ।

शायद वह छुट्टी का दिन था। अनुपम खाना खाकर निकल गया था—जब से डाक्टर साहब गये है वह घर में उतना टिकता है, जितना टिकना उसके घर मे होने की स्थिति बनाये रखे। दोपहर मे गायत्री जी रत्ती के साथ बाज़ार चली गई। जत्ती अकेली थी।

हालाँकि मैं अपने कमरे मे बड़े आराम से पढ रहा था और कोई ध्यान नही था कि जत्ती से बात करूँगा—ऐसा पहले से तय किया भी नही था, पर यकायक ध्यान आया। शायद जत्ती के अकेले होने ने प्रेरित किया हो। मैं स्वीकार कर लूँ कि जत्ती कितनी भी बेहिचक मुझसे बात करने लगी थी, पर उसकी गम्भीरता का आतंक मुझ पर बरक़रार था।

मैं दुविधा के साथ ऊपर गया, यह सोच कर कि पहले उसका मूड देखूंगा।

कैसे आए ? वह आंगन मे कुर्सी पर बैठी साड़ी मे फाल लगा रही थी।

यूँ ही। तुम बाज़ार नही गई ।

इच्छा नही थी। फिर यह आलस-आलस मे टल रही थी। चाय की तलब है ?

नही, पढते-पढते उकता गया था सोचा···

कोई बात ज़रूर है।। इतना इधर-उधर क्यो कर रहे हो। साफ़ कहो ना क्या चाहिये। जत्ती ने मुझे देखा।

एक बार मेरी इच्छा हुई, लौट आऊँ। फिर हिम्मत करके कहा—तुम मुझसे बैठने के लिये तो कहो। मैं ज़बरदस्ती मुस्कराहट लाया।

कुर्सी निकाल लो कमरे से मुझे साड़ी समेटनी पड़ेगी।

मैं कमरे से कुर्सी निकाल लाया। जत्ती ने मुझे देखा—जैसे इस

नहीं था ।

नहीं । मेरी नज़र में तुम बहुत ऊँची हो गईं, जिस दिन मैंने सुना । मैंने उसे आश्वस्त किया ।

मैं आज भी निर्णय को सही मानती हूँ । क्यों मैं उस आदमी को स्वकार करती जो कमजोर था, और धोखेबाज । मुझसे शादी करने की क्या मजबूरी थी ? मैंने पहली बार जत्ती के चेहरे पर तमतमाहट देखी । उसकी आँखें लाल हो आई थीं । जैसे सफेदी पर रक्त के डोरे बिछ गये हों ।

शांत और चुप रहने वाली जत्ती इतनी रौद्र, इतनी विस्फोटक !

तुम गलत नहीं थी । पर उसके बाद, गये सालों में तुमने अपने को अनिश्चितता के हवाले कर दिया । मैंने शायद जानकर ऐसा कहा ।

नहीं । वह सख्त होकर बोली । मैंने किसी भी निराशा को अपने पास फटकने नहीं दिया । मैं जीती रही अपने को समेटे । स्थिर ।

कल क्या करोगी ?

जो आज कर रही हूं । तुम क्या यह कहना चाहते थे कि मुझे शादी की बात सोचनी चाहिये थी । किस के बूते पर ? मम्मी और डैडी को खर्चे में डालती । उन्होंने मुझसे शादी के लिये कहा । मैंने मना कर दिया ।

पढ़ी-लिखी भी तो हो । मैंने उसे किसी तरफ इशारा करना चाहा ।

मैं लड़की की नौकरी की शर्तें जानती हूँ । तुम शायद किसी सुधारक के तेवर में मुझे सीख देना चाहते हो । क्या खुद कुछ कर सकते हो, मेरी बदनामियां ओढ़ सकते हो ? मैं निर्णय ले सकती हूँ ।

जत्ती ने उलटकर मुझे मार दिया । मैं चुप रह गया । वह मुस्करायी थी, जैसे मेरे पूरे व्यक्तित्व पर व्यंग्य कर रही थी । मुझे क्या पता था नमाज़ पढ़ने जाऊँगा, रोज़े हाथ पड़ेंगे । जत्ती ने सिर्फ आवेश में कहा, या वह गुस्से में भी गम्भीर थी, इसका पता कैसे लगता ? मेरी आधी अक्ल उसके आवेश को देखकर कट गई थी ।

रात का वक्त । पुस्तकालय से उपन्यास लाया था । पढ़ रहा था । किसी बंगला उपन्यास का हिन्दी अनुवाद—बहुत रोचक ।

बंगाली लेखक बहुत लिखता है, पर उतना ही रोचक ।
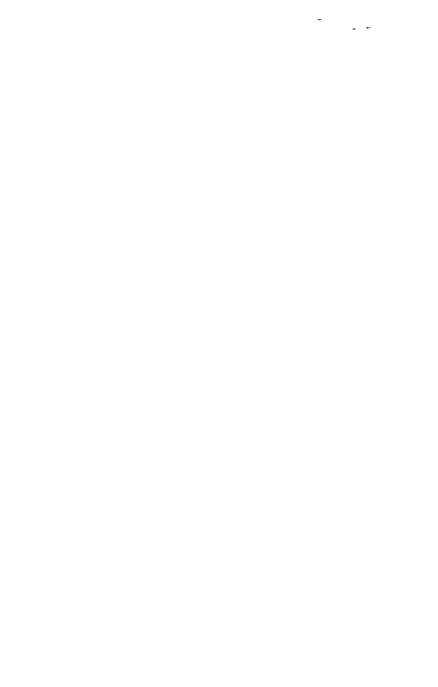
हूँ—यानी जो मेरे विचारों में आया है ? या वह जो किराये की किताबों का लेखक होकर घर-घर में रोमानी मुलावा फैला रहा है ?

तभी मेरा दरवाज़ा खटकता है।

कौन ?

जवाब नहीं आता। दरवाज़े पर फिर धीरे-से खट-खट होती है।

मैं उठता हूँ। दरवाज़ा खोलता हूँ। अनुपम खड़ा है।

अब आये हो ?

वह लड़खड़ा रहा है। साँस सुडकी-मुडकी-सी चल रही है।

वह उसी हालत में मेरी खाट की तरफ बढ़ता है—लेट जाता है।

उसके मुँह में बदबू नहीं है—निश्चित रूप से उसने नशे की गोलियाँ ले रखी हैं।

अनुपम ! मैं आवाज़ देता हूँ।

वह सिर्फ 'हूँ' कर पाता है। मैं ताज्जुब करता हूँ वह घर कैसे पकड़ सका।

मैं गुस्से में हो गया हूँ। जी में आता है—तड़ातड़ उसके तमाचे मारूँ। लेकिन क्या फायदा।

मैं अन्दर से डरता हूँ—क्या इसे यहाँ लेटा रहने देकर छिपा लूँ इस तथ्य को कि अनुपम नशा करके आया था। यह पहली बार है, या इसकी आदत है ?

मैं खड़ा-खड़ा सोचता हूँ।

डाक्टर साहब चलते-चलते कह गये थे, सबका ध्यान रखना। उनकी पारिवारिक उदासीनता और बच्चों को आज़ादी देने का नतीजा ?

गायत्री जी, जत्ती, रत्ती इसे इस बदहवासी की हालत में देखकर कितनी दुःखी होंगी।

एक वह रत्ती है जिसने मरने को लेकर कितना बदलाव लिया।

मैं खड़ा-खड़ा देख रहा हूँ, सोच रहा हूँ।

अनुपम ! अनुपम !···मैं उसे हिलाता हूँ। वह 'हूँ' तक नहीं करता।

मैं इसी संस्कृति, समय और चरित्रों की कतार पर सोच रहा था क्या ?

मैं उस उपन्यास को देख रहा हूँ जिसको तकिया बनाकर अनुपम दाबे पड़ा है।

मैं ऊपर जाता हूँ और दरवाज़े पर दस्तक देता हूँ।

जसी आती है। आँख मलती है—कौन ?

मैं।

इस वक्त !

मम्मी को जगाओ।

क्यों ?

जगाओ ना ? अनुपम कहाँ है ?

वह आया नहीं। देर से आता है।

मम्मी को जगाओ, अनुपम मेरे कमरे में है

भेज क्यों नहीं देते उसे।

वह नशे में बेहोश है।

मैं चलती हूँ।

मम्मी"'। मैं गायत्री जी को भी साथ लेना चाहता हूँ।

मैं कह रही हूँ, मैं चलती हूँ, वह दरवाज़ा उढ़ककर नीचे उतरती है। मैं पीछे-पीछे हूँ।

वह अनुपम के पास आकर खड़ी हो जाती है।

कब आया ?

थोड़ी देर पहले।

यह बिल्कुल बिगड़ता जा रहा है। आवारा हो गया है।

उठ ! उठ ! घर में सब मर गये हैं ना, कोई कहने वाला नहीं रहा, जो आवारों की तरह"'जसी तमतमाई हुई, आवेश में उसे झकझोरना चाहती है।

मैं उसका हाथ पकड़ लेता हूँ—पागल हुई हो। उसे कतई होश नहीं है।

जसी खड़ी होती है। यह घर देखेगा। हमें देखेगा। खाक डालेगा हम पर।

तुम उत्तेजित क्यों हो रही हो ? मैंने धीरे-से कहा।

मेरे कहने के बाद भी जत्ती संयम नहीं रख पाती। कुर्सी तक जाकर बैठ जाती है। बुला लाओ मम्मी को।

मैं दोबारा ऊपर जाता हूँ। गायत्री जी को बुलाता हूँ तो रत्ती भी जाग जाती है। वह मेरे आँगन खड़ा देख धक् हो जाती है।

क्या है ?

नीचे, मेरे कमरे मे चलिये।

गायत्री जी बिना सवाल किये मेरे कमरे में आ जाती हैं। उनके साथ रत्ती भी आती है। जत्ती कोहनी पर सिर टेके है। उसके आँसू ढुलक आये हैं।

क्या हुआ इसे ?

नशे मे धुत्त पड़ा है। होश तक नहीं है। जत्ती बोलती है।

मुझे शक था, लेकिन मैं पहिचान नहीं पाती थी। आता था, गुम रहता था। खाना खाता, सो जाता था। पूछती थी तो जवाब देता था—थका हुआ हूँ।

आज हद से ज्यादा गोलियाँ ली हैं—शायद। मैंने कहा।

कैसे ठीक होगा, मुझे तो पता नहीं। क्या लाऊँ? गायत्री जी ने पूछा।

मैं खुद नहीं जानता। सोने दिया जाये इसे। मैंने कहा।

डाक्टर को बुलवाऊँ क्या ? कहीं…

उसकी ज़रूरत नहीं है। मैंने दिलासा दिया।

मम्मी, डैडी को इसकी शिकायत लिखकर बुला लो। यह रोज नशा करेगा, हमारी मुसीबत बुलाएगा। रत्ती ने कहा।

वही अगर ध्यान देते तो क्या आवारा हो पाता—गायत्री जी की हताशा बोल रही थी।

वही क्या कर लेंगे। जो बिगड़ने पर उतारू हो उसे कौन रोक सकेगा। यह जत्ती थी।

सारी रात हम चारों जागते रहे। अनुपम की आँख सुबह भी नहीं खुली। पर नशा उनारू हो गया था। उसे सहारा देकर ऊपर ले गया—कमरे में लिटा दिया।

मैं कमलकान्त के कहने के मुताबिक दो घंटे के लिये दफ्तर से सीधा यूनि-यन कार्यालय जाने लगा। वहाँ मजदूर कार्यकर्ताओं का माहौल रहता। कमलकान्त और उसके साथी रोज आते थे। यह सब अलग-अलग जगह कार्य करते थे। काम के क्षेत्र बटे हुए थे। अपने-अपने क्षेत्र की समस्याएँ लेकर सब आते, उस पर बहसें होती, मैं सुनता रहता।

मैं स्वीकार करना चाहूँगा कि वहाँ जा रहा था, काम करने की इच्छा भी थी, लेकिन माहौल बड़ा अजीब-सा लगता था। ऐसे लोग भी आते जो अनपढ़ होते। उनमें शिष्टाचार के बजाय अक्खड़पन था। वह आपस में इतने उजड्ड हो जाते थे कि जी में वह आता उनसे कोई कह दे—बाहर निकल जाओ।

मैंने यह शिकायत कमलकान्त से भी की।

वह हँसा। लोगों को जानो। सब हमारी-तुम्हारी तरह बाबू शिष्टा-चार वाले नहीं होते।

अक्सर ऐसे भी लोग आते जो आवेश में अपने काम करने की शिका-यत करते, और धमकी देते—अगर आप नहीं कर सकते तो साफ मना कर दीजिये। हम दूसरी यूनियन के पास चले जाएँगे।

ऐसा लगता था, अपनी समस्या को देकर वह यूनियन पर अहसान कर रहे हैं।

कमलकान्त ने मजाक में पूछा था—अब तो दो महीने से ज्यादा हो गये आते-आते। कैसा लगता है?

अजीब-सा। अभी अपने को जमा नहीं पा रहा हूँ। मैंने जवाब दिया।

फ़ाइलें और केसेज पर तो सही राय देते हो। कमलकान्त ने मेरी तारीफ़ की।

उसका सम्बन्ध दिमाग से है।

हाँ, यही वजह थी कि मैंने तुम से इस रास्ते के खतरों को कहा था। कागज को निबटाना और फील्ड को समझना अलग तरह की पकड़ चाहते हैं। क्या तुम कभी-कभी फैक्टरियों और मजदूरों की बस्तियों में मेरे साथ चलना चाहोगे?

हाँ। मैं चाहता हूँ वह हालात भी देखूँ जो निरंतर संघर्ष पैदा करते

हैं। कॉलेज में मैंने हड़तालें देखी पर सक्रिय भाग नही लिया।

वह हड़तालें भी किसी-न-किसी तरह हमारे द्वारा चलाई जाती हैं। हमारे लड़के वहाँ भी संगठन का कार्य करते हैं।

मुझे पता है। पता है कॉलेज के चुनावो मे राजनीतिक दल किस तरह दखलदाजी करते थे। तब वह मुझे कभी पसंद नही आया। मैं कल्चरल कार्यक्रमों को ज्यादा तरजीह देता था।

दूसरों के आने से आपसी बातो मे बाधा अक्सर पड़ जाती थी। हमारी बात टूट जाती थी। कमलकान्त की व्यस्तता, और उसके काम करने की ताकत कमाल की थी। वह थकता नही था। आसानी से धैर्य नहीं छोड़ता था।

मैं कभी-कभी अपने से सवाल करता हूँ—मैं क्या चाहता हूँ? नौकरी के अलावा क्या कोई अतिरिक्त मकसद हो सकता है?

क्या मेरी कोई विशेष महत्त्वाकांक्षा है?

पता ही नहीं लगता। परिस्थितियाँ घटनाओं की शक्ल में उठती हैं, निकल जाती हैं। सब अपनी-अपनी जगह किसी चुनौतीपूर्ण युद्ध में लगे दीखते हैं। यह युद्ध कैसे हैं? किससे हैं? किसलिये हैं?

अवतरमानी का फोन आया दफ्तर में—उसके पिता की मृत्यु हो गई। दफ्तर मे फैल गई सूचना। लोगों ने—वह भी बहुत इने-गिने लोगों ने चर्चा की, काम यूँही चलता रहा। इतने बड़े दफ्तर मे बहुत से लोग तो सिर्फ शक्ल से पहचानते भर होगे। हाँ, इसी इमारत में रोज आना होता है। मरना, पैदा होना या शादी-ब्याह सब व्यक्तिगत मामले हैं। या फिर परिचितों-दोस्तों के बीच के।

मुझे पता लगा तो धक्का-सा लगा। सेक्शन ऑफीसर को जब छुट्टी की एप्लीकेशन दी तो उन्होंने पूछा—मिस अवतरमानी के यहाँ जा रहे हैं?

मैंने कहा—हाँ।

उन्होंने कहा—सेक्शन की तरफ से हमारी सहानुभूति जाहिर कर दीजियेगा।

करीब-करीब सब ने सहानुभूति ले जाने वाला वाहक बना दिया।

मिसेज डोगरा ने अपना नाम खास तौर से लिये जाने के लिये कहा।

मैं अवतरमानी के यहाँ पहुँच गया।

शोक का माहौल था। पड़ोस के, जाति के बीस-बाईस लोग मौजूद थे। अवतरमानी सक्रिय थीं। उसकी माँ भी रोकर चुप हो गयी थी। उसको औरतें घेरे बैठी थीं। उसने मुझे देखा। सिर्फ आँखें पलभर के लिये छलछलाईं। उसने धोती के पल्ले से पोंछ लिया। बाहर आकर देखने लगी कि किसी चीज की जरूरत हो।

एक बार फिर रोना-पीटना शुरू हुआ जब टिकटी अन्दर ले जाई गई। लाश बाँध दी गई। अब वह एक तरफ़ खड़ी रो रही थी।

अर्थी को कंधे पर उठा लिया गया—लोग लेकर चल दिये।

मैं लोगों के पीछे-पीछे चल रहा था। मैं उनमें किसी को नहीं जानता। श्मशान तक जाना था। दाह-संस्कार हुआ। सब विधिवत् कार्य पूरा करके लौट आए।

माँ का पत्र आया। उसके पन्द्रह-बीस दिन बाद सज्जो का पत्र आया। वही परस्पर की शिकायत। माँ के पत्र से लगता है, जैसे बर्दाश्त की सीमा तक पहुँच गई है। उसे अब शिकायत कई वजहों से हो गई है। सज्जो के पत्र पर विश्वास करूँ तो ऐसा लगता है कि वह तीव्रता से उस तरफ बढ़ रही है जहाँ पहुँचकर वह शान्ति से जी सके। लेकिन उसका पत्र मुझ दूर बैठे को आशंकित कर रहा है।

माँ ने लिखा, सज्जो कालिज जाकर बिल्कुल [illegible] है। जवानी की उम्र है, ऊँचा-नीचा पैर पड़ गया तो मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहोगे। तुम्हारे पिता के ढंग भी अच्छे नहीं [illegible]। [illegible] उनकी मति भी भ्रष्ट हो गई है। मैंने अच्छी तरह पता [illegible] है, सज्जो एक लड़के के चक्कर में पड़ गई है। बड़ा बेशर्म है। घर [illegible] है। दोनों [illegible] में घंटों बैठे रहते हैं। मैंने एक दिन गुस्से में आकर [illegible]। उस [illegible] के जाने के बाद सज्जो ने कोहराम उठा दिया। [illegible] दिये। उन्होंने कह दिया—अगर नहीं सह [illegible] आकर ले जाए। मैं अकेली पड़ी रहती हूँ, [illegible]

बाप-बेटी पता नहीं क्या करते हैं कमरे में। तू आकर अपनी आँखों से देख ले।

मैं अभी तक इस घर की इज्जत दबाये रही अब मेरे बस में नहीं। मैं बाप-बेटी दोनों को छटी का दूध याद दिला दूँगी। मोहल्ले और रिश्तेदारों में ऐसी थू-थू करवाऊँगी कि भूल जायेंगे सारा अत्याचार।

मुझे माँ का ऐसे पत्र को दूसरे से लिखवाकर मेरे पास भेजना बिल्कुल उचित नहीं लगा। मैं सोचने लगा अगर वास्तव में उसकी मानसिक स्थिति इतनी विस्फोटक है, तो ऐसा कब तक चलेगा। पिताजी क्या मेरे कहने से काबू में आ जायेंगे? माँ को यहाँ ले आने से समस्या का हल तो नहीं निकलता।

सज्जो का पत्र दूसरा तेवर लिये है। उसने भी उस लड़के का नाम लिखा है। वह लिखती है—भैया यह लड़का सेल्स-टैक्स में नौकर है। कॉलेज में एम. ए. फाइनल में है। वह मुझ से शादी करने के लिये तैयार है। वह अपने घर भी मुझे ले जा चुका। मैं नहीं समझती कि तुम उसे देख कर पसन्द नहीं करोगे। मैं शादी की बात तुम्हें लिख रही हूँ, पिताजी को नहीं बताया है। मैं जानती हूँ पिताजी उसकी जाति को लेकर विरोध करेंगे। मैंने अपने में तय कर लिया है—करूँगी शादी तो उसी से। मैं इस घर से छुटकारा पाना चाहती हूँ। वह यह भी कहता है तुम पढ़ाई जारी रखना मुझे ऐतराज नहीं है।

माँ अगर मुझे बदचलन मानती है तो मानें मुझे परवाह नहीं है।

दोनों तरफ से चुनौतियाँ चढ़ी हैं। मैं समझ नहीं पाता इस द्वंद्व को कैसे रोकूँ। माँ ने बुलाया है—मैं जल्दबाजी में नहीं जाना चाहता।

मैंने माँ को और सज्जो को अलग-अलग पत्र डाल दिये हैं। माँ को भी समझाया है कि वह जिस तरह से सोच रही है, वह बहुत गलत है। घर की इज्जत क्या यूँ रुक सकेगी? और थू-थू करवाएगी तो क्या थूक उस पर नहीं पड़ेगा।

सज्जो को भी लिखा है कि जब तक मैं नहीं आ पाता हूँ स्थिति को खराब न करे। मैं जल्दी आने की कोशिश करूँगा।

खत डाल दिये लेकिन परेशानी बढ़ गई दिमाग में। जस्सी ने मुझे कई

दिन तक उदास देखा तो जैसे मेरा चोर पकड़ लिया।

देख रही हूँ कई दिन से बहुत परेशान हो।

नहीं, खास बात नहीं है। मैंने छिपाने की कोशिश की।

है ज़रूर, बताना नहीं चाहो तो तुम्हारी मर्जी।

क्या बताऊँ?

तुम्हारे घर से जिस दिन से पत्र आए हैं, उसी दिन से···

मुझे आश्चर्य हुआ कि वह इन पत्रों का भी ध्यान रख रही थी जो अलग-अलग वक्त आए थे।

हाँ, वह पत्र ही कारण हैं। बताने के बजाए, मैं उठा। मैंने अलमारी में से दोनों पत्र उठाए और जस्सी को पकड़ा दिये।

उसने सरसर पढ़ लिये। खुद सोच में पड़ गई। फिर बोली—यह *सब क्या है? क्या कोई भी घर इन क्लेशों से बचा है?*

नहीं बचा है, तभी तो चैन नहीं मिल पाता। सहज लगता ही नहीं है कुछ।

हाँ। एक अपनी जिन्दगी जीनी पड़ती है एक वह जो दूसरे अपनी राय दे-देकर ढोल की तरह बजा देते हैं।

मेरी समझ में नहीं आता क्या करूँ? मैंने जस्सी को देखा जैसे अपनी समस्या का हल उससे चाह रहा हूँ।

वह बड़े इतमिनान से बोली—दो ही तो रास्ते हैं। या तो लापरवाही अपनाकर छोड़ दो उन्हें कि वह टकराकर, टूटकर अपने आप रास्ता निकालें। या तुम्हारा अगर असर है तो उसे इस्तेमाल करो। सज्जो को उसका भविष्य पाने में मदद करो।

मुझे जस्सी को असली दिक्कत बतानी पड़ी—मेरे पिता और मेरे बीच में बहुत फासला है। अगर उन्होंने नहीं चाहा तो सज्जो के नाबालिग होने का फायदा वह तुरन्त उठायेंगे। वह शायद यह भी न चाहें कि सज्जो उनसे अलग हो जाये।

क्यों? क्या जिन्दगी भर अपने पास रखकर जिन्दगी खराब करेंगे उसकी?

वह इतनी जल्दी नहीं चाहेंगे। मैं और क्या कहता जस्सी से।

शशि, मेरा अन्दाज है सज्जो उनसे भी विद्रोह कर जायेगी। उसे करना चाहिए। मैं अपने को लेकर भी सोचने लगी हूँ। कोई सहारे स्थाई नहीं होते।

जत्ती ने जैसे अपना निर्णय सुना दिया—तुम्हें जाना चाहिये।

उलझे हुए शख्श को इतना उत्प्रेरण और संकेत काफी ताकत देता है।

मैं प्राकृतिक या आकस्मिक दुर्घटनाओं की बात नहीं करता—हालांकि ऐसी दुर्घटनाओं में भी निहित ताक़त होती है कि वह व्यक्ति की सारी शक्ति को अचानक उठाकर एक बिंदु में कर दे। आखिर आदमी की मूल इच्छा क्या है?

जीने की। बाकी इच्छाएँ इसके इर्द-गिर्द हैं। इसी को निरंतर रखने का उपक्रम हैं।

और यही शंकाओं और भय को पैदा करती है।

व्यक्ति का व्यक्ति से सम्पर्क एक टकराव ही तो है। स्थितियाँ इसी वजह से बनती हैं।

शक, संदेह, आशंका से हम खुद भी ग्रसित होते हैं—दूसरों पर भी इन्हें आरोपित करते हैं। तब चुनौती आकर पड़ती है आत्मविश्वास के सामने।

अन्तिम संघर्ष आत्मविश्वास और स्थितियों में होता है। या आत्म-विश्वास का आत्मविश्वास से।

मैं छुट्टी लेकर घर गया—जाना जरूरी था। फिर जत्ती ने विशेष साहस दिया था।

अवतरमानी ने पूछा था—क्यों जा रहे हो?

मैंने उसे भी संक्षिप्त में बता दिया था। उसका भी कहना था—बचा कैसे जा सकता है ऐसी छोटी-छोटी स्थितियों से। हस्तक्षेप करना पड़ता है। बल्कि निर्णायक बनना पड़ता है, क्रूरता के साथ।

अवतरमानी ने जब यह राय दी, मुझे लगा वह अपने को ही बोल रही थी। पिता के मरने के बाद वह गम्भीर रहने लगी थी।

मैंने पूछा था—किस उदासी में लिपटती जा रही हो!

उसने जवाब दिया था—छूट जायेगी। अभी ताजी है। वह कैसे भी थे, मेरे पिता थे। क्वार्टर में यहाँ-वहाँ फिरते महसूस होते हैं। माँ से लड़ते। मुझसे सहमे-सहमे।

कमलकान्त से जब मैंने कहा—सात दिन के लिये घर जा रहा हूँ, कार्यालय नहीं आ सकूँगा, तब उसने भी पूछा—कोई खास बात।

वहाँ से बुलाने का खत आया है—माँ का आग्रह है।

पहली बार कमलकान्त ने पूछा कि मेरे परिवार में कौन-कौन हैं। मैंने उसे *आने का कारण नहीं बताया—वास्तविक कारण।* लेकिन वह अगर कुरेदता तो मैं उसको भी बता पड़ता।

लोग बड़ी-बड़ी बातों को पेट में घुटे रहते हैं। मैं छिपाने की चाह रख कर भी वैसा ज्यादातर नहीं कर पाता।

क्या मैं कमज़ोर हूँ, जो दूसरों के माध्यम से आत्मविश्वास बटोरता हूँ?

मैंने कॉलिज में ऐसे एक शख्स को देखा था जो अपने को बड़ा लड़ाकू किस्म का दिखाता था। लेकिन वह अकेला नहीं रह सकता था। मैंने उसे कभी अकेला नहीं देखा। क्या वह अपने में घबराता था? पता नहीं। लेकिन वह शख्स उसी कंधे को तोड़कर हमेशा दूसरा कंधा अपनाता रहा जिस कंधे ने उसे कुछ समय के लिये ऊँचान दी। वह पीछे रहने की युक्ति साधता रहा—छाया मिलती थी। अवसर पर धक्का दे सकता था।

क्या वह वास्तव में ताक़तवर था? या छोकटा।

कॉलेज में वह हर साल किसी-न-किसी बहाने से हड़ताल कराता। व्यक्तिगत प्रतिष्ठा कायम रखने के लिये।

सात दिन में पाँच दिन घर रहा। तनाव में रहना सम्भावित था। मुझे खुद आश्चर्य हुआ कि मैं अबकी इतना आक्रामक कैसे हो गया। अब की मैंने पिताजी का भी सामना किया। करना ज़रूरी हो गया।

मझली से मैंने सीधा सवाल किया—क्या तुम्हें [illegible]
धोखा नहीं देगा? उसने कहा—हाँ, मैं चाहती [illegible] [illegible] मिल
मैंने उसको कह रखा है, जब तुम आओगे, [illegible] लना होगा।

सज्जो इतनी समझदार कब से हो गई। शायद माँ के शक ने उसे सतर्क रखा कि कहीं माँ सच न हो जाये।

मैंने नहीं चाहा कि मैं उससे पूरी बारहखड़ी पूछूं कि वह निर्णय की इस स्थिति तक क्रमशः कैसे आई। मैं उस लड़के से न अपने घर मिला, न उसके घर। उसे लेकर रेस्त्रां चला गया।

मेरे इस सवाल पर कि ऐसा क्या पाया तुमने सज्जो में जो शादी को तैयार हो गये। वह स्पष्ट बोला—मैं साधारण परिवार का लड़का हूँ। मेरी माँ है, दो छोटे भाई हैं। अपने को बनाया है, खुद संघर्ष करके, क्योंकि पिताजी का स्वर्गवास तब हो गया था, जब मैं अट्ठारह वर्ष का था। वह कपड़े की दुकान पर मुनीम थे।

मैंने सज्जो से परिवार की हालत कतई नहीं छुपाई। उस पर मेरे दो भाइयों का उत्तरदायित्व होगा, मैंने उससे यह भी कह रखा है। उसने कहा, जैसे रटा हुआ पाठ बिना उतार-चढ़ाव, बिना भावुकता की लय के पढ़ गया हो।

मैंने पूछा—अगर मेरी माँ और पिता तुम्हारे साथ शादी नहीं करना चाहें तब ?

वह चुप रहा।

होगा भी यही। मैं जानता हूँ माँ तैयार नहीं हैं, पिता दूसरी जात के नाम पर विरोध कर सकते हैं। तुम जानते हो, सज्जो अभी भी नाबालिग है।

शायद उसने इस पेचीदगी पर ध्यान नहीं दिया था। वह मेरे चेहरे को देख रहा था जैसे यह नहीं जान पा रहा हो कि मैं उसके पक्ष में हूँ या विरोध में।

भाई साहब, ऐसी हालत में असर सज्जो पर होगा। उसने हताश होकर कहा।

उनकी नाराजगी में तुम सिर्फ सज्जो को पा सकोगे। वैसे भी सज्जो ने बताया होगा हम भी अजहद के साधारण परिवार हैं।

मेरी इस तरह की कोई इच्छा नहीं है। उसे फिर आस-सी नजर आई।

मैं जब उठा तो विश्वास दिलाया कि मैं कोशिश करूँगा। लेकिन तुम दोनों की तरफ़ से ऐसा बचपना न हो जो मुझे नीचा दिखा दे।

मैं वायदा करता हूँ। उसने मुझे आश्वस्त किया। उसके चेहरे पर हल्की-सी ख़ुशी झलकी।

यह बातें सपाट और कामकाजी-सी थीं। वह मुझे परिस्थितियों में से निकला संजीदा लड़का लगा।

माँ को बस में करना इतना आसान नहीं था। सज्जो के लिए वह इस क़दर कबाड़ अपने में भरे थीं कि उस लड़के का ज़िक्र करते ही भड़क उठीं।

तू भी उसका हो गया। मैंने इसलिए लिखा था तुझे। यहाँ से चला गया है ना, इसलिए बहुत अच्छी हो गई—मैं बुरी।

उन्हें लग रहा था जिस लड़ाई को उन्होंने ठान रखा है, उसमें मैं उन्हें हरवा रहा हूँ।

मैंने समझाने की कोशिश की—सज्जो का भविष्य देखो। अगर वह तकलीफ पायेगी तो क्या तुम्हें चैन मिलेगा।

उसने मेरा ध्यान दिया? आज भी तामनी है। मैं नहीं सह सकती। मुझे साथ ले चल। बाप-बेटी आज़ादी से रहेंगे।

जितना बड़बड़ाना था, बड़बड़ाईं। आख़िर मुझे कहना पड़ा—तुम लोग जानो। मुझे वहाँ से बुलाने की ज़रूरत नहीं है।

सहारे का विपरीत हो जाना, पस्त कर देता है। वह मेरे प्रति भी तटस्थ हो गईं—गुमसुम। जैसे सारा मोह छिलके की तरह उतार फेंका हो।

पिता जी से सीधा सामना करना पड़ा। सज्जो ने साथ दिया। उसने दबाव के साथ उनसे कह दिया—वह वहीं शादी करेगी, सिर्फ़ उससे।

पिता जी ने परिचित डाँट और क्लेश से काम लिया। मुझे गुस्से के साथ कहना पड़ा—आप नहीं करेंगे तो मैं करूँगा। आप दख़ल नहीं दे सकते।

वे चार दिन घर भर के लिये विस्फोट पर विस्फोट के थे। बड़ी तेज़ी से समीकरण बदले थे। संधियाँ छिन्न-भिन्न हुई थीं।

कहने को वही चार आदमी थे और पाँचवाँ स्वीकृति चाह रहा था। सज्जो को मैंने उसी तरह समझाया था, जैसे उस पाँचवे (सुदर्शन) से वायदा लिया था।

सबसे बडा सवाल था समय का—वह चाहता था इम्तिहान दे ले तब शादी करे।

चलते-चलते मैं एक बार सुदर्शन के घर भी गया—उसकी माँ से मिलने।

मैं लौट आया हूँ। जानता हूँ ऐसी संघर्ष वाली स्थिति के बाद आसानी से ताल-मेल नहीं बैठता। वह पुनर्संयोजन की कीमियागीरी से गुजरता है। कौन-सी स्थितियों से गुजरते हुए क्या ढलता है—ढलेगा—कह नहीं सकता।

गायत्री जी ने अनुपम के मामले को बहुत सख्ती से सम्भाला। मैं नहीं समझता था इतनी सहृदय और नम्र दीखने वाली वह इतनी कठोर हो सकती हैं। उन्होंने उसे सावधान कर दिया था कि दोबारा उसने नशा किया तो वह घर से निकाल देंगी। अगर वह नहीं छोड सकता है, घर से चला जाये फिर जिस तरह रहना चाहे रहे।

यह कहने तक सीमित नहीं था। अनुपम को रात में आठ से पहले आना होता था। वह जाँचती थीं कि हल्का-सा नशा भी न किया हुआ। अनुपम को उनके कमरे में सोना होता था। निगरानी रखने के लिये उन्होंने मुझसे भी कहा।

इतनी सख्ती करने से अनुपम जिद पर न आ जाये—मेरे मुँह से यूँ ही निकल गया था एक दिन।

गायत्री जी ने दृढ़ता से कहा था—आ जाय, तो उसका वह रास्ता पड़ा है। मैं वह माँ नहीं हूँ जो इस मामले में ढील बरतूँ।

डाक्टर साहब छुट्टियों में आये तो उन्हें भी बेटे के कारनामे बताये गये। गायत्री जी ने उन्हें ताकीद कर दी थी, जैसा वह कर रही हैं, उसमें वह दखल न दें।

डाक्टर साहब वैसे ही चुप रहने वाले प्राणी थे, फिर गायत्री जी की

हिदायत टालने का साहस उनमें कतई नहीं था। उन्होंने गृहस्थी की बाग-डोर कभी की गायत्री जी को सौंप दी थी।

अनुपम अकेला हो गया था। किले बदी में आ गया था। उसकोज त्ती, रत्ती, घर के हर सदस्य की उपेक्षा सहनी पड़ रही थी।

तरीका कारगर साबित हुआ। उसने डर से या इस भावना से कि संरक्षण छोड़कर कहाँ सिर खपा सकेगा, अपने पर नियंत्रण कर लिया।

इस घटना का परोक्ष असर मुझ पर भी पड़ा। जत्ती की शादी के बीच बहाना कर मेरे पास आने वाली घटना ने मुझे उस सम्भावना के सामने खड़ा किया जिस पर मैं उस वक्त डरा था। उस वक्त क्या मैं गायत्री जी के इस कठोर रूप को जानता था? रत्ती का वह जोश उसे भी ले डूबता, मुझे कमरा छोड़ना पड़ता।

एक कमज़ोरी कुछ दिन से मुझ में पनप रही थी, उसे भी धक्का लगा। मुझे अपने आपके सामने स्वीकार लेना चाहिए कि जत्ती मेरी कल्पना के किसी कोरे हिस्से को रचने लगी है।

मेरी सहानुभूति नहीं, मेरा आकर्षण उसकी तरफ बढ़ गया है।

इसे रोकना होगा। जत्ती के प्रति इस पैदा हुए नामालूम से लगाव को उदासीन करना होगा।

जान-बूझकर मैंने अपने कार्यक्रम को और विस्तार दे दिया। मैं रोज़ शाम कार्यालय जाता था, अब कमलकान्त के साथ यदा-कदा मज़दूरों की बस्ती और कारखानों की सभा में जाने लगा।

मज़दूरों की ज़िन्दगी को नज़दीक से देखने का अनुभव मेरे बहुत से भ्रम को तोड़ रहा था।

यह सही था कि वह गरीब थे। लेकिन वह अब इतने निरीह और दब्बू नहीं थे। संगठन ने उनमें हिम्मत भरी थी। बल्कि सही स्थिति कहूँ तो वह आवेशयुक्त और निडर हो गये थे।

उनकी बातों के तरीके से लगता था, वह इतने बेखबर नहीं हैं कि अपना शोषण आसानी से होने देंगे। आर्थिक सुविधाओं का स्वाद उन्हें लग चुका है। वह भाग्य से ज़्यादा संघर्ष को महत्त्व देते हैं।

चर्चा के दौरान मैंने कमलकान्त से पूछा—क्या तुम मानते हो मज़दूर

और गरीब वर्ग अपने अधिकार के प्रति सचेत हो चुका है ?

नही। इस वर्ग के पास विश्वास है, लडने की ताकत है लेकिन समझ उतनी तीखी नही है। यह इतना जान गये हैं कि सामूहिक लडाई इनके हक में जाती है, लेकिन नेताओ की अपेक्षा रखते हैं।

राजनीतिक दलों के अपने-अपने श्रमिक सगठनों ने, मालिको की विभाजित रखने की नीति ने, इनकी ताकत को बाँट दिया है।

विकल्प ! मैंने सवाल किया।

बहुत मुश्किल है। लेकिन जब भी यह सगठन एक हुए हैं और आंदोलन छेड़ा है—काफी हद तक सफल हुए हैं।

कमलकान्त ने यकायक मेरी तरफ अहं सवाल ढकेला—विघटन की हालत मे, या असफल होने की दशा में क्या संघर्ष छोड दिया जाये ? संघर्ष छोड देने के मतलब क्या यह नही होगे कि शोषकों को हम खुली छूट दे रहे होंगे—हमें तबाह करो। हमें लूटो। अपने को भरो।

कमलकान्त की यही आस्था मुझे प्रेरित करती थी। मैं उसके माध्यम से एक दिशा की तरफ बढने को उत्सुक था। पर यह अनुभव और तथ्य भी तो सक्रिय थे जो मेरी सैद्धांतिक जानकारी को सबूत देकर संशोधित तथा पुख्ता कर रहे थे। मुझमें मजदूरो के प्रति लगाव पैदा कर रहे थे।

लेकिन मुझे एक बात का आश्चर्य होता है। हालांकि मैं महसूस करता हूँ जो मैं कर रहा होता हूँ, या जो मैं निर्णय लेता हूं वह सही दिशा मे होता है—*कम-से-कम मुझे संतुष्टि मिलती है—फिर भी एक स्थाई* रिक्तता मुझमें खलखलाती रहती है। ऐसा क्यों लगता है मैं भटक रहा हूँ, बेचैनी लिये !

कभी-कभी अजीब संयोग होता है। फिर संयोग का कार्य ढूँढो उसे जोडो तो कारण भी मिल जाता है। मैंने कभी यह भ्रम नही पाला कि मैं बहुत निडर व्यक्तित्व वाला हूँ। मुझे यह भी वहम नहीं है कि मैंने हमेशा सही निर्णय लिये हैं, याकि परिस्थितियों का सदा नियन्त्रक रहा हूँ। कोई भी अगर इस तरह का खयाल रखता है तो उससे ज्यादा अहमन्य कोई नहीं हो सकता।

जिन्दगी है, जो किराये पर मिली है। हम किरायेदार की तरह उसे खूबसूरती और उपलब्धियों को संजोते हुए बिताते चले जायें इसी में शायद सार्थकता है।

उपलब्धियाँ पहचान में आ जाती हैं। सार्थकता सवालों से घिरी होकर भी अपना अहसास कराती है।

एक ही दिन अवतरमानी मुझे उदास और खिन्न मिली, उसी शाम जत्ती भी। दोनों की एक-सी शिकायत थी। दोनों जैसे कई दिनों से—या हो सकता है कई महीनों से—घुट रही थीं।

अवतरमानी ने कहा—दफ्तर के बाद मेरे साथ चलना, मेरे घर।

मैंने कहा—चलूंगा।

एक बात और याद आई—वैसे यह साधारण बात है। अपने सेक्शन ऑफीसर दस दिन पहले रिटायर हुए। सेक्शन ने और उनके परिचितों ने मिलकर रेस्त्रां में विदाई आयोजित की।

सबने उनकी सेवाओं की, कर्मठता की, मिलनसारिता की तारीफ़ की। उनसे बोलने का आग्रह किया गया।

वह संक्षिप्त बोले, पर मार्मिक।

आप लोग जवान हैं, कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने उम्र का पकाव ले लिया है। सेवानिवृत होने की मानसिकता बड़ी ऊहापोहवाली होती है। साथ छूटता है, माहौल छूटता है, ज़िन्दगी का तनातनाया क्रम यकायक ढीला होता है। उसे फिर से सही ढंग से बैठाना होता है।

अब वानप्रस्थ या सन्यास जैसी सुविधाएँ तो हैं नहीं कि निश्चित होकर अपना लें। ज्यादा-से-ज्यादा यह है कि घर बैठे, बच्चों में रमो। यूं तो काहिली और उद्देश्यहीनता दबोच सकती है। आप आलसी और दूसरों के लिये बोझ हो सकते हैं।

मैं कर्म में विश्वास करता हूँ। उसके बगैर रह नहीं सकता। मैंने निर्णय लिया है, कुछ रोज़ी-रोटी का धंधा करूंगा और बाकी समय संगठन के कामों के लिये दूंगा। आप लोगों के साथी कमलकान्त से मैं वायदा ले चुका हूं कि वह मेरा भी उपयोग करे। मैं अपनी सामर्थ्य और योग्यता के मुताबिक काम करूंगा।

और गरीब वर्ग अपने अधिकार के प्रति सचेत हो चुका है?

नहीं। इस वर्ग के पास विश्वास है, लड़ने की ताकत है लेकिन समझ उतनी तीखी नहीं है। यह इतना जान गये हैं कि सामूहिक लड़ाई इनके हक में जाती है, लेकिन नेताओं की अपेक्षा रखते हैं।

राजनीतिक दलों के अपने-अपने श्रमिक संगठनों ने, मालिकों की विभाजित रखने की नीति ने, इनकी ताकत को बाँट दिया है।

विकल्प ! मैंने सवाल किया।

बहुत मुश्किल है। लेकिन जब भी यह संगठन एक हुए हैं और आंदोलन छेड़ा है—काफी हद तक सफल हुए हैं।

कमलकान्त ने यकायक मेरी तरफ यह सवाल उछाला—विघटन की हालत में, या असफल होने की दशा में क्या संघर्ष छोड़ दिया जाये? संघर्ष छोड़ देने का मतलब क्या यह नहीं होगा कि शोषकों को हम खुली छूट दे रहे होंगे—हमें तबाह करो। हमें लूटो। अपने घर भरो।

कमलकान्त की यही आस्था मुझे प्रेरित करती थी। मैं उनके माध्यम से एक दिशा की तरफ बढ़ने को उत्सुक था। पर वह अनुभव और तथ्य भी तो सक्रिय थे जो मेरी सैद्धांतिक जानकारी को सबूत देकर संशोधित तथा पुख्ता कर रहे थे। मुझमें मजदूरों के प्रति लगाव पैदा कर रहे थे।

लेकिन मुझे एक बात का आश्चर्य होता है। हालांकि मैं महसूस करता हूँ जो मैं कर रहा होता हूँ, या जो मैं निर्णय लेता हूँ वह सही दिशा में होता है—कम-से-कम मुझे संतुष्टि मिलती है—फिर भी एक स्थाई निराशा मुझमें कसमसाती रहती है। ऐसा क्यों लगता है मैं भटक रहा हूँ, बेचैनी लिये!

कभी-कभी अजीब संयोग होता है। फिर संयोग का कार्य ढूँढ़ो उसे जोड़ो तो कारण भी मिल जाता है। मैंने कभी यह भ्रम नहीं पाला कि मैं बहुत निडर व्यक्तित्व वाला हूँ। मुझे यह भी वहम नहीं है कि मैंने हमेशा सही निर्णय लिये हैं, बल्कि परिस्थितियों का सदा शिकार रहा हूँ। कोई भी अगर इस तरह का सवाल रखता है तो उससे ज्यादा अहमक कोई नहीं हो सकता।

ज़िन्दगी है, जो किराये पर मिली है। हम किरायेदार की तरह उसे खूबसूरती और उपलब्धियों को संजोते हुए बिताते चले जायें इसी में शायद सार्थकता है।

उपलब्धियां पहचान मे आ जाती हैं। सार्थकता सवालों से घिरी होकर भी अपना अहसास कराती है।

एक ही दिन अवतरमानी मुझे उदास और खिन्न मिली, उसी शाम जत्ती भी। दोनों की एक-सी शिकायत थी। दोनो जैसे कई दिनो से—या हो सकता है कई महीनो से—घुट रही थी।

अवतरमानी ने कहा—दफ़्तर के बाद मेरे साथ चलना, मेरे घर।

मैंने कहा—चलूंगा।

एक बात और याद आई—वैसे यह साधारण बात है। अपने सेक्शन ऑफीसर दस दिन पहले रिटायर हुए। सेक्शन ने और उनके परिचितों ने मिलकर रेस्त्रां में विदाई आयोजित की।

सबने उनकी सेवाओ की, कर्मठता की, मिलनसारिता की तारीफ़ की। उनसे बोलने का आग्रह किया गया।

वह संक्षिप्त बोले, पर मार्मिक।

आप लोग जवान हैं, कुछ ऐसे भी हैं जिन्होने उम्र का पकाव ले लिया है। सेवानिवृत्त होने की मानसिकता बडी ऊहापोहवाली होती है। साथ छूटता है, माहौल छूटता है, ज़िन्दगी का तनातनाया क्रम यकायक ढीला होता है। उसे फिर से सही ढग से बैठाना होता है।

अब वानप्रस्थ या सन्यास जैसी सुविधाएँ तो हैं नही कि निश्चित होकर अपना लें। ज्यादा-से-ज्यादा यह है कि घर बैठे, बच्चो में रमो। यूँ तो काहिली और उद्देश्यहीनता दबोच सकती है। आप आलसी और दूसरों के लिये बोझ हो सकते हैं।

मैं कर्म में विश्वास करता हूँ। उसके बग़ैर रह नहीं सकता। मैंने निर्णय लिया है, कुछ रोज़ी-रोटी का धधा करूँगा और बाकी समय सगठन के कार्यों के लिये दूंगा। आप लोगो के साथी कमलकान्त से मैं वायदा ले चुका हूँ कि वह मेरा भी उपयोग करे। मैं अपनी सामर्थ्य और योग्यता के मुताबिक काम करूँगा।

दूसरों के बीच काम करना प्रेम को विस्तार देता है। इससे कुछ-न-कुछ अच्छा बन पड़ता है—दूसरों को लाभ पहुँचानेवाला।

फिर जैसे वह सचेत हुए। शायद मैं ज्यादा बोल रहा हूँ। मैंने इरादा यही किया है, देखिए कितना पूरा कर पाता हूँ।

इतना कहकर वह बैठ गये।

मिसेज डोगरा और कुछ साथी इस पर भी दूसरे दिन टिप्पणी कर रहे थे। हिन्दुस्तानी दिखावे और उपदेश के माहिर होते हैं। कहने और करने मे बहुत फर्क होता है जी। प्रेम ही उमड़ रहा था तो पहले यूनियन मे क्यो नही चले आये। रास्ते तो खुले थे।

मेरी इच्छा हुई थी तड़ाक से जवाब दूँ—अगर नही करेंगे तो आपका क्या ले लेंगे।

वास्तव मे मिसेज डोगरा बड़ी फर्जी किस्म की स्वार्थी औरत है। दिखाती यह है कि उससे ज्यादा काबिल और कोई नही है। अपने आदमी के बारे मे बबड़-बबड़ करती रहती है। अवतरमानी ने बताया था—सरासर झूठ बोलती है। इसका आदमी किसी सरकारी ऑफिस मे कार का ड्राइवर है। डटकर पीता है, जुआ खेलता है, औरतों के पास जाता है।

अवतरमानी ने कहा—एक दिन मैंने सही बात कह दी, तो खिसिया गई। मुझसे मुँह फुला लिया। कई दिन तक बोली नही।

मैंने भी सोच लिया—मत बोल तो मत बोल। आगे दिमाग तो नही चाटेगी।

लेकिन बेशर्म है जी! चलाकर बोलने लगी। वह जो इसे स्कूटर पर लेने आता है वह इसका पति नही है।

मैं अवतरमानी के बारे मे लिख रहा था और उस संयोग के बारे में जो उस दिन बीता।

अवतरमानी ने कहा—दफ़्तर के बाद मेरे साथ चलना है, मेरे घर।

मैंने कहा—चलूँगा।

मैं उसके साथ गया।

रास्ते में उसने अपने और घर के लिये सामान की ख़रीद की। साथ

ये तो इधर-उधर की बातें होती रही। वह भी जानती थी और मैं भी अच्छी तरह जानता था कि आपस की अंतरंग बातों के लिये यह अवसर निकाला गया है। घर पहुँचकर उसने सामान माँ को सम्भलवाया।

मैं ताजा होना चाहती हूँ, तुम भी चाहो तो हाथ-मुँह धो लो। उसने कहा।

पहले तुम हो आओ। मेरी भी फ्रेश की इच्छा कर रही है।

वह चली गई। मैं सोफे पर आराम करने की हालत में ढीला होकर अधलेटा-सा हो गया।

उसके पिता के मरने के बाद शायद यह दूसरी बार था कि मैं उसके घर आया था। स्वाभाविक था, उनकी अनुपस्थिति का सूनापन महसूस होता।

किसी भी वातावरण से बेखबर हो जाओ, वह दूसरे छोटे-छोटे माहौलों में दब जाता है—पहुँचो, वह सजीव हो उठता है।

हम पता नहीं कितने छोटे-छोटे माहौलों को इस तरह बिखराते रहते हैं, अपनाते रहते हैं। अबतरमानी साड़ी वगैरह बदलकर आई।

चलो!

मैं उसके साथ अन्दर गया। उसने गुसलखाना दिखा दिया।

माँ सामने पड़ती तो नमस्ते कर लेता, वह किचन में थी।

औपचारिकता में वह गुसलखाने के सामने खड़ी रही, फिर मुझे अपने कमरे में ले आई।

पलंग पलंग के पास मेज, ड्रेसिंग टेबिल, अलमारी की किताबें, टेप, दीवारों की तस्वीरें सब अपनी जगह सलीके और रुचि से थी। कमरे में खिड़की बन्द होने की वजह से अंधेरा था, उसने लाइट जला दी थी।

अजनबीपन लग रहा था, पर बाल काढे।

यहाँ चाय पियोगे, या बाहर वाले कमरे मे? उसने पूछा।

जैसा चाहो।

वहीं, चले चलते हैं, आराम से बैठ सकेंगे। उसने अपने आप निर्णय लिया।

हम बाहर आ गये।

माँ ट्रे में नाश्ता ले आई।

मैं, आ जाती। उसने खड़े होकर ट्रे हाथ में ले ली। मेज़ पर रख दी। माँ लौट गई। कोशिश की थी, कोई लड़का या लड़की काम करने वाला मिल जाये, लेकिन मिलता नहीं। रुपये बहुत माँगते हैं—सौ-सवा सौ। ऊपर से खाना-कपड़ा अलग। कहाँ से निकाल पायें। माँ ने भी मना कर दिया—दो जनों के लिए क्या नौकर रखना।

बड़ा मुश्किल है भुगतना। मेरी खुद की हिम्मत नहीं पड़ती।

तुम्हारी तो और भी मुश्किल है। मुझे माँ के होने की सुविधा तो है। कैसे करते हो ?

जैसे अकेले क्वारे करते हैं।

हाँ, क्वारे भी तो हो। अवतरमानी मज़ाक बनाती हुई हँसी। तभी आजकल फालतू काम करते फिरते हो। मैंने सुना है यूनियन के काम में काफी दिलचस्पी लेते हो। क्या करो, क्वारे जो हो।

अवतरमानी जैसे व्यंग्य और मखौल पर आ गई थी।

कौन-सा नाश्ता कर रही हो—मेरा, या सामने रखा हुआ ? मैं मुस्कराया।

वह अपने सेक्शन ऑफीसर थे ना, खैर, वह रिटायर हुए तो घोषणा की काम करने की—घर पर घरवालों का दिमाग खाते, सोना दूसरों का खाना ठीक रहेगा। तुम्हारे साथ क्या प्रोबलम है ?

यह समझ लो कि वक्त काटने की। मैंने उसी की लय को जारी रखा।

नहीं, नहीं। तुम ज़रा ज़्यादा ही भावुक हो। सोचते हो हालात बदल लोगे। वैसे आदर्श का करिश्मा यही होता है कि वह अपने शिकार को आसानी से छोड़ता नहीं, फँसाए रखता है। लेकिन मैंने तुम्हें बुलाया था यह जानने के लिये कि क्या तुम मुझसे उकता गये हो ? या किनारा करना चाहते हो ?

तुम्हें ऐसा लगा ? मैंने उसे देखते हुए पूछा।

लगा, तभी कह रही हूँ। मैंने ऐसा क्या कर दिया ? तुम इतना तो जानते हो मुझे तुम मेरा सहारा लगते हो। मुझे लगी-लिपटी बात

करनी नहीं आती।

अवतरमानी ने पत्थर-सा पटक दिया बीच में। मेरी समझ में नहीं आया मैं क्या जवाब दूँ। जानकर मैंने ऐसा किया नहीं, लेकिन ऐसी मजबूरी भी नहीं लगी जिसकी वजह से मैं उनसे मिले बगैर नहीं रह पाता।

चुप रह गये ना। ऐसा होता है जब आदमी सही जगह से पकड़ लिया जाता है। लेकिन मेरी भी एक बुरी आदत है—मैं हामी भरवा लेती हूँ सामने वाले से। मानो कि सही बात है। अवतरमानी पीछे पड़ गई।

मैंने कहा, तुम्हारा यह सोचना गलत है कि मैं तुमसे उकताया हूँ। भला क्यों उकताऊँगा। किनारा करने का सवाल नहीं। पर···

हाँ, पर से आगे तुम्हारी तरफ से जो उदासीनता है, मैं उसी की वजह समझना चाहती हूँ। क्या तुमने मुझसे कुछ पाने की आशा बनाई, जो मैं दे नहीं सकी। साफ कहो क्या तुमने किसी भावुक निकटता की या मेरी देह से कुछ चाहा?

कतई नहीं। मैंने बलपूर्वक नकारा।

तब?

मैंने यही नहीं सोचा मेरी तुम्हारी निकटता कितनी होनी चाहिये, किस किस्म की। मैंने सफाई दी, जो सच थी।

सही कहते हो। न तुमने सोचा और न लगाव महसूस किया। जबकि मेरे साथ यह हुआ कि मैं लगाव महसूस करने लगी। इसलिये तकलीफ़ मुझे हुई, अभाव भी खटका। तुम बेबाक, अपने को इधर-उधर व्यस्त किये रहे।

पता नहीं अपनी स्थिति पर काबू पाने के लिये, या भिन्नता के प्रति आकर्षण की वजह से, मैंने यह रवैया अपनाया तो था ही, इसलिये जबर्दस्ती अस्वीकार करने में ढोंगपना होता।

मैंने अवतरमानी से कहा—तुम किसी हद तक ठीक कहती हो। हो सकता है तुम्हारी उस बात ने कि तुम्हें आदमी की रोमान्तिक मानसिकता से चिढ़ है, मुझे अन्दर से उखाड़ दिया हो।

वह तो है, और रहेगी—और अवतरमानी के चेहरे पर सख्ती

झलक उठी।

फिर मुझमे लगाव ? अब मुझसे नही रुका जा सका। मैं उस पर इस तरह से हमला कर बैठा जैसे ताक लगाए बिल्ला चिड़िया पर उछलता है। अवतरमानी, यह तुम्हारी दोहरी हालत है। तुम्हारी नही, यह आम प्रवृत्ति है लड़कियों की। वह अपने को सुरक्षित रख भावुकता में रहना भी चाहती हैं, लेकिन दूसरा उस स्वाभाविक कमज़ोरी मे आता है, तब उसे झिड़कती हैं, या छिटका देती हैं। यह किस तरह की उपयोगितावादी नजर है ? या विपरीत सेक्स मे होने की सुविधा है।

मुझे पता नही, मैं किस जोश में इतनी चुभनेवाली बात कह गया। अवतरमानी सन्नाहट मे आ गई। कुछ पलो के लिए उसका चेहरा, उसकी आँखें खाली और भावशून्य हो गईं। वह जैसी बैठी थी, बैठी रह गई। लेकिन वह मुझे एकटक देख रही थी।

मैं लज्जित हो गया। बल्कि तत्काल पश्चात्ताप की उस दशा में हो गया, जैसे आदमी उस वक्त हो जाये जब अनजाने मे उसके उछाले पत्थर से कोई तितली चोट खाकर गिर पड़े।

सच मे अवतरमानी की आँखों मे आँसू तिर आये। फिर वह ढुलक कर उसके चेहरे पर धारी खींचने लगे।

अजीब विगलित माहौल हो गया।

तुम ठीक कहते हो शशि ! शायद मैं तुम्हारा अपनी किसी जरूरत के लिये उपयोग कर रही थी।···फिर वह सम्भली। माफ करना, मैं अभी आई।

वह ट्रे उठाकर अन्दर चली गई। मैं दबा हुआ, भारी-सा, बैठा रहा। मुझे क्या पता था किसी बिन्दु पर वह इतनी टूट सकती है।

क्या यह वही स्थिति थी—बिल्कुल मेरी जैसी—जहाँ मैं सारे औपचारिक-अनौपचारिक, गहरे और कामचलाऊ सम्बन्धों के बावजूद अकेलापन महसूस करता था। ऐसा क्यों लगता है कि व्यस्तता और तृप्ति जब निचुड़कर अन्दर टपकती हैं, तब एक शून्य पैदा हो जाता है। वह शून्य ही शायद अंतरंगता के भराव के लिये भगाता है।

अवतरमानी थोड़ी देर मे आई। वह अपना चेहरा धोकर आई थी।

लेकिन आँखें लाल थीं जो जाहिर कर रही थी, वह रोकर आई है।

मैं अपराधी की तरह सहमा हुआ बैठा था। अब कोई बात ही नहीं निकल रही थी मुंह से।

खाना यहीं खाओगे ना। उसने पूछा।

खा लूंगा। मेरी मना करने की हिम्मत नहीं थी।

फिर चुप्पी।

घुटन-सी हावी हो रही थी। मैंने कहा—जब तक खाना बनता है, चलो घूम आएँ थोड़ी दूर।

चलो!—वह खुद चाह रही थी।

वह अन्दर गई, साड़ी बदलकर आ गई।

हम घूमते रहे, ऐसी बात बचाते हुए जिससे कोई तनाव आए। जैसे एक-दूसरे को बहला रहे थे—या बहल रहे थे।

लगभग आठ बजे मैं अवतरमानी के यहाँ से आया। हालांकि हम घूमने निकल गये थे, उसके बाद साथ खाना खाया था, लेकिन मुझ में सहमापन पूरे समय रहा। उस सहमेपन के साथ अन्दर एक मोह भी था जो फिर से उठ आया था। अवतरमानी रो लेने के बाद सहज हो गई थी। उसने चलते-चलते कहा था—इच्छा हो रही है, तुम यहीं रहो।

क्या करोगी रोककर? मैंने छेड़ते हुए उससे पूछा था।

अपने को तुम्हारे हवाले कर देती—देखती कि तुम...

माफ करो। मैं परीक्षा का विद्यार्थी नहीं हूँ।

बचोगे कहाँ तक। मैं देखना चाहती हूँ, हमारे बीच में क्या कोई आत्मीय रिश्ता है? वह बहुत शोखपने से कह रही थी। उसने एक चौंकाने वाली टिप्पणी और जोड़ी। मैं आदमी की जिस भावना से चिढ़ती हूँ तुम जानते हो—लेकिन इसके मायने यह मत लेना कि मैं देह की पवित्रता-अपवित्रता की कायल हूँ। कतई नहीं।

बस-बस पहेलियों में फँसाना छोड़ो। मैंने हल्के मूड में कहा। हम चौराहे पर आ गये थे। मैं सवारी तय कर रहा था।

धन्यवाद! उसने कहा और विदाई देनेवाला जैसा हाथ उसने हवा में ऊपर कर लहरा दिया।

मैंने कहा, यह दिन अजीब संयोग का दिन था। मैं कमरे मे आकर लेट गया। अवतरमानी की बातें और उसकी छवि घूम रही थी। मैं तय कर रहा था, अवतरमानी निश्चित रूप से अपनी खींची हुई लक्ष्मण रेखा से बाहर हो गई है। यह जाहिर था कि वह मुझे अपना राग-संसार समर्पित कर चुकी थी। और मैं था कि खुद अपने सामने न लगाव से इन्कार कर सकता था, न उसे निश्चित अंश के साथ स्वीकार सकता था।

ऊपर से किसी के उतरने का आभास हुआ। मैं गर्दन घुमाकर देखूं कि कौन नीचे जा रहा है कि जत्ती दरवाज़े पर खड़ी थी।

आ गये। यह मेरा तीसरा चक्कर है। आजकल बड़े घूमने लगे हो। वह अन्दर आ गई।

हाँ, देर हो गई, आज। मैंने बैठते हुए उत्तर दिया।

सिर्फ़, आज। क्यों झूठ बोलते हो। तुमने तो रवैया अपना लिया है। अपने-आप कुर्सी खिसकाकर बैठ गई।

थोड़ा-सा खर्चा करो—बल्ब की बजाय ट्यूब लगाओ। पीली-पीली रोशनी मे कमरा बीमार लगता है।

सब कहीं गये हैं ? मैंने विषयांतर किया।

सब ऊपर है। मैं कहकर आई हूँ, तुम्हारे पास जा रही हूँ। एक खुशखबरी सुनानी थी—वैसे तुम्हे क्या मतलब। कितने दिन से मिल रहे हो ?

मैं खुलकर हँस पड़ा। बोला—किस दिन ऊपर नहीं आया ? साफ़-साफ झूठ बोल रही हो।

रहने दो। खानापूर्ति का व्यवहार छिपता है क्या ? मम्मी भी कह रही थी आजकल शशि उखड़ा-उखड़ा-सा रहता है।

किरायेदार हूँ। क्वारा लड़का। दो-दो लड़कियों के बीच रहना पड़ रहा है। सावधान नहीं रहूँ तो…

उसने कुट से बात काटी—बातें आ गई हैं ना। सुनो, मैंने नौकरी तलाश ली है। वह मिल गई। उसने उत्साह से कहा।

कहाँ ? मैंने पूछा।

स्कूल मे। प्राइवेट इंगलिश स्कूल है। पाँच सौ रुपये देंगे। मैंने तय

किया है, इस साल रुपया जोड़कर अगले साल ट्रेनिंग कर लूंगी।

बधाई, तुम्हें। मुझे वास्तव में खुशी हुई। लेकिन आश्चर्य भी कि उस बारे में उसने बताया नहीं पहले।

तुमने कभी जिक्र नहीं किया कि नौकरी ढूंढ रही हो। मैंने कहा।

तुम्हे फुर्सत कहाँ है। मैं तुमसे शिकायत के मूड में थी।

या लड़ने के? मैं हल्केपन से बात कर रहा था। जानकर ऐसा कर रहा था। अवतरमानी के साथ ताजा अनुभव था।

लड़ने का सवाल नहीं। लेकिन तुम जान गये हो निर्णय मैं किस तरह लेती हूँ।

जान गया। मैं उसे देख रहा था। उसकी दृष्टि मे उत्साह के बजाय अब गम्भीरता थी।

मैंने तय किया है, मैं शादी भी करूंगी। सही है न निर्णय! अब उसकी भाषा में और चेहरे पर संकल्प जैसी दृढ़ता थी।

मैं उसकी चमक से सहम गया। लड़की है या ज्वार। या चट्टान!

बे-रंग क्यों हो गये? और ऊपरी-ऊपरी रहो।

मुझे खुशी हुई तुम्हारा निर्णय सोचकर। मुझे खुद लगा कि मैं नकली तरीके से बोल गया।

होनी चाहिये। यह मेरी भविष्य की जिन्दगी का प्लान है। उसने उसी मस्त लहजे मे कहा। फिर मेरे ऊपर जैसे उसने ग्रेनेड का पिन दांत से निकाल कर फेंका हो।

तुम्हें सोचना होगा, अपने को जाँचना होगा कि क्या मुझे अपनाने की हिम्मत कर सकते हो? मैंने तुम्हें समझा है। अपने बारे में बता दिया है। तुम्हें चाहती भी हूँ। हालाँकि यह भी जानती हूँ कि तुम तुरन्त निर्णय ले नहीं सकते। बहुत वक्त है—काफी लम्बा।

मुझे काटो तो खून नहीं। मैं कैसा हूँ? खुद इधर-उधर बिखरता हूँ। आत्मीयता देता हूँ। लेकिन सामनेवाला जब प्रेरित होकर मुझे अपनत्व देने के लिये उपस्थित होता है, मैं घबरा उठता हूँ। क्यों? देने और का यह कैसा विरोधी रिश्ता।

मुझे मजा आ गया। मैंने जैसी कल्पना की थी, वही

तुम्हारी। शशि, उपदेश देना और वास्तविकताओं के सामने होना अलग हालत है। मैं तुम्हें तुम्हारे निर्णय लेने मे सहायता दूंगी।

जत्ती इस हक के साथ बोल रही थी जैसे यह हक उसे किसी से लेना नही है, उसके पास है।

मेरी बात खत्म हो गई। कहो तो चली जाऊँ। वह खडी हो गई।

मैं तुम्हारे रवैये से परेशान हो गई थी। तय कर लिया था तुम्हें यूँ कतराने नही दूंगी।

मैं चलूँ ही। और जत्ती मुस्कराती हुई चली गई।

मेरी हालत कैसी हो रही थी, मैं स्वयं नही पहचान पा रहा था।

संयोग भी ऐसा और अलग-अलग दोनो द्वारा तय किया हुआ। मैं सिर्फ़ विषय-माध्यम।

लेकिन क्या यह आकस्मिक था? बिना कार्य-कारण की पृष्ठभूमि के!

जत्ती जत्ती ही थी। अवतरमानी अवतरमानी ही। मैं, मैं था।

दफ्तर का काम इतना एकरस और बंधाबधाया होता है कि आदमी को घिसने लगता है। एक ही तरह की फ़ाइलें, एक ही तरह की भाषा, एक ही तरस की टिप्पणियाँ, एक किस्म के निर्णय। लेकिन फिर भी श्रृंखला चलती रही है। रोज काम नया होकर पैदा होता रहता है।

ऐसा नही है कि काम की थकान आदमी के उत्साह और ताजगी को मार देती है, बल्कि सबसे पहले मरती है उसकी सूझबूझ, उसकी रचनात्मक प्रवृत्ति, उसकी वह खास प्रवृत्ति जिसे जोखिम लेना, या साहसिकता कहते हैं। *तनख्वाह की सुरक्षा व्यक्ति की सम्भावनाओ को जड कर देती है।*

मैं देखता हूँ नौकरी की गुलामी का अद्भुत हल्का जहर है जो नसो और दिमाग मे इस कदर बस जाता है कि किसी को अहसास तक नही होता। एक नीरस क्षेत्र होता है दफ्तर, दूसरा घर का दायरा।

उन्ही दोनो क्षेत्रों मे अल्पजीवी मनोरंजनों को खोजते, उनसे बहलते, बीतते चले जाते हैं।

व्यवस्था में व्यवस्था। व्यवस्था के लिये व्यवस्था। क्या इसी की कैद जीवन की स्वतंत्रता है।

मुझे लगता है जिसे हम गुणात्मक, या क्वालिटी का जीवन कहते हैं, वह भी अतृप्ति का ढका हुआ कुआं है।

फिर भी जो जिस तरह के घेराव में आ गया, वही उसकी लत बन गई। सुखी वह है जिन्होने अखबार की खबरों को दुनिया मान लिया और जिन्दगी, घर से दफ्तर, दफ्तर से घर को सौंप दी।

मेरी उम्र क्या है कि मैं बड़ी-बड़ी बातों पर सोचूं। लेकिन छोटा भी तो नही हूं जो सोच नही पाऊं।

अपने तन-मन और विवेक का दर्द बड़ा पीड़ादायक होता है।

मैं नही जानता कब, कौनसा काल ऐसा होगा जब आदमी की कीमत धन, उसकी शोषण-सामर्थ्य और दूसरों के हकों को अपना अधिकार बना लेने के अतिरिक्त और किसी तरह मापी जाती होगी। उसकी सस्कृति मुख्य संस्कृति बनी रही, क्योंकि वही वर्ग तो आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक ताकत का चक्र घुमाने वाला था।

और एक गरीब तबका था, जो भूख, गुलामी, नंगाहट को अपनाये टोने-टोटकों व अति-प्राकृतिक शक्तियों को अपनी संस्कृति का हिस्सा बनाये जीता रहा। इस सस्कृति को लोक-सस्कृति कहा गया जो महज मनोरंजन थी उस श्रेष्ठ, उदात्त संस्कृति के लिये।

मैं अपने तन-मन और विवेक के दर्द की बात कर रहा हूं।

कहने को आजाद लोकतंत्र का युवक—सविधान मे दी गयी स्वतन्त्र-ताओं, सुविधाओं की कितनी स्वादयुक्त व्याख्या पढी थी।

लेकिन पाया क्या ? बन्द रास्तो वाली भ्रष्टतर व्यवस्था। सड़ता, छिजता अंग-अंग।

वही; एक धन-शक्ति के लिये पागल वर्ग। दूसरा गरीबी, गुलामी को सहता मजबूर वर्ग।

मेरे तन-मन और विवेक का दर्द यही है कि मैं भी नही जान पाता क्या कुछ है जो कीड़े लगने से बचा है।

वातावरण के प्रदूषण पर नया कार्य शुरू हो रहा है। विषय प्रचार

पाता जा रहा है—आदमी का प्रदूषण !

आदमी से वातावरण प्रदूषित हो रहा है या वातावरण आदमी को प्रदूषित कर रहा है !

जी मे आता है उस सडांध को खोल-खोलकर दिखाऊँ जिसने आदमी की खुशबू को दबाकर निष्क्रिय कर दिया है।

दर्द यही है मेरे पूरे व्यक्तित्व का।

कमलकान्त एक बडे कारखाने की लडाई मे फँसा हुआ है। यूनियन की सारी ताकत मालिको के खिलाफ की गई हड़ताल को जारी रखने मे लग रही है।

लेकिन दूसरी समानान्तर यूनियन है। वह अपनी ताकत आजमा रही है। तारीफ यह है कि दोनो यूनियन के समर्थक मज़दूर हडताल पर है, लेकिन लडाई जितनी व्यवस्थापकों से है, उतनी परस्पर।

दो बार दोनो यूनियनो के समर्थको मे पत्थरों और लाठियो से भिडन्त हो चुकी है। पुलिस ने तीसरी ताकत बनकर दोनो पर व्यवस्था के नाम से गोली चलाई। कितने मजदूर घायल हुए—सही गिनती नही हो सकी। तीन मज़दूर मर गये।

अफवाहें फैली हैं कि एक यूनियन को मालिको से पैसा मिल रहा है। वह कौन-सी यूनियन है, पता नही चल पा रहा है। दोनो का नाम व्यवस्था वर्ग से आ रहा है।

एक अफवाह और है कि उसी क्षेत्र मे कारखाने मालिकों का दूसरा ग्रुप है जो इस कारखाने के मालिको को ठप करना चाहता है जहाँ हडताल चल रही है। वह किसी एक युनियन को आर्थिक और मजदूर शक्ति से कर रहा है।

लडाई किससे है? किसलिये है? क्यों है? संघर्ष का क्या यही रूप होता है?

कमलकान्त ठीक कहता था कि संघर्ष की आग में कूदना और उसकी लपटों को झेलना बहुत मुश्किल है।

मैं पाता हूँ, झेलना दरकिनार रहा मैं तो इसके नतीजे देख-देखकर परेशान हो रहा हूँ।

मैं और सेवानिवृत्त सेक्शन ऑफीसर साहब उस कच्ची बस्ती में गये थे जहाँ हमारे समर्थक मजदूर रहते थे। दो दिन हुए विरोधी यूनियन के मजदूरों ने रात में आकर वहाँ कोहराम मचा दिया था। भयानक मार-पीट की। छुरे चलाकर बहुतों को घायल कर गये। दो मजदूरों की फिर हत्या हो गई।

बदले में पागल हमारे मजदूर गुंडाई का भुगतान उसी हिंसा से चुकाने के लिये बेचैन थे।

पुलिस मुकदमे बनाने और उन्हें पकड़कर ले जाने का कार्य मुस्तैदी से कर रही थी।

सेक्शन ऑफीसर साहब ने पूछा था—यह कैसा संघर्ष है?

मैं क्या बता सकता था। मैं खुद हतबुद्धि था—यह संघर्ष किस के खिलाफ है? किस की जानों का नुकसान हो रहा है?

कमलकान्त और उसके जुझारू साथियों की रणनीति दिन-रात चौकन्नी होकर कदम उठा रही है।

संघर्ष में मैं सक्रिय रूप से नहीं हूँ, लेकिन दिमाग दहशत खा गया है।

कमलकान्त ने कार्यालय आना बन्द कर दिया। वह और उसके चुने हुए साथी भूमिगत होकर हड़ताल को चला रहे हैं।

अब यह हिदायत भी आ गई है कि कार्यालय नहीं खोला जाये। सूचना प्राप्त करने का जरिया खत्म हो गया।

अखबारों में छपनेवाली खबरों से हड़ताल की स्थिति पता चल पा रही है। हड़ताल गौण हो गई है—दो यूनियनों का आपसी संघर्ष प्रमुख हो गया है। या अखबार में प्रमुख बना दिया गया है।

दफ्तर में भी चर्चा होती है। वैसे, जैसे अखबारों की दूसरी राजनीतिक खबरों पर होती है। या जैसे किसी भीड़ खींच रही चल रही फिल्म पर होती है।

सब बिखरा-बिखरा-सा टुकड़े-टुकड़े लगता है।

मेरे तन-मन और विवेक का दर्द यही है कि हर संघर्ष अपनी धुरी को छोड़कर रेत में क्यों फँस रहा है?

किन की लड़ाई, किन से होनी चाहिए, यह पहचान होते हुए भी दिशाहीनता क्यों है? संघर्ष हो भी रहे हैं पर उनके असली नियंत्रक कौन हैं? किन के हित सध रहे हैं? कौन संघर्षों को दुह कर फायदा उठा रहा है और ताकतवर बन रहा है?

मुझ जैसों की नियति व्यक्तिगत जीवन में भी सवालों से घिरी है—और सार्वजनिक जीवन मे हिस्सेदार होना चाहते हैं तो सवालों की कतारें हैं। उनसे रचा हुआ चक्रव्यूह कोई रास्ता नही देता।

मैं कही भी संदिग्धता मे या धुआँसे मे रुक जाता हूँ तो वह चलने की अनिश्चयता नही कही जा सकती। मैं पीछे हट जाता हूँ तो वह कायरता नही होगी।

मेरे इस सोच को भावुकता कह दी जाती है तो कहा जाये।

विश्लेषण अन्त मे कहाँ ले जाकर गिराता है?

मेरे तन-मन और विवेक का दर्द मैं ही समझ सकता हूँ या मेरे हम-उम्र।

माँ ने खत डलवाना बन्द कर दिया। वह नाराज़ हैं। उसका नाराज होना लाजिमी था। उनकी आशाओ पर मैंने पानी फेरा था।

पिताजी पहले कभी खुश नही रहे; मेरे चुनौती देनेवाले रूप से और ज्यादा चिढ़ गये।

सज्जो के इस बीच मे दो पत्र आये। पहले में वह कुछ घबराई-घबराई-सी लगी। उसने लिखा था, भैया, घर मे तनाव जबर्दस्त पैदा हो गया है। माँ उतना बोलती है, जितने से काम चल जाए। पिताजी बात-बात पर झिड़कते है और धमकी देते हैं—देख लूंगा, कौन तेरे मन की करता है। साल-सवा-साल नौकरी को मिले हो गये तो बेटे के चर्बी चढ़ आई है। अपनी मर्जी से बहिन की शादी करेगा।

फिर मुझे धिक्कारते हैं—मैंने इसलिए कॉलेज भेजा था। कम्बख्त, वहाँ पढ़ने गई थी, या रिझाने।

कभी-कभी इतनी गन्दी गालियाँ देते हैं कि सहा नहीं जाता। माँ से लड़ते हैं—तूने बिगाड़ा है बेटी को।

माँ जवाब देती है—सत्यानास तो तुम करते बेटी का। बड़े मटर-मटर बातें करते थे कमरे मे।

सच, ऐसी इच्छा होती है भैया भाग जाऊँ घर से। मैंने सुदर्शन से कह दिया मुझे इस नरक से जल्दी छुटकारा दिलवाओ, वरना किसी दिन आत्महत्या कर लूँगी। मैं तुम्हें भी यही लिख रही हूँ।

मैंने इस खत का जवाब उसे समझाकर लिखा था। उसे सावधान किया था—समय का इन्तजार करे। किसी दूसरी समस्या को न पैदा करे।

सज्जो का दूसरा पत्र महीने-डेढ़ महीने बाद आया। उसने लिखा था, मैंने सुदर्शन को घर आने के लिए कतई मना कर दिया है। उसके यहाँ चली जाती हूँ। माँ और उसके दोनों भाई मुझ से स्नेह करने लगे हैं। घर का वातावरण बड़ा अच्छा लगता है। सुदर्शन कह रहा था, वह इम्तिहान के बाद छुट्टी लेकर तुम से मिलने आयेगा।

माफ़ करना भैया, मैं अब तक उनको बराबर का सम्बोधन करती रही, अब उन्हें आदर देना चाहती हूँ। लिखना चाहती हूँ, 'यह कह रहे थे, इम्तिहान के बाद मैं भाईसाहब से मिलने जाऊँगा।'

मुझे पत्र के आखिरी भाग को पढ़कर हँसी आई। लेकिन सुखद भी लगा कि किस तरह मन रिश्ते को स्वीकार करते ही अभिव्यक्ति के माध्यम-भाषा में बदलाव चाहता है। भावना के अनुकूल उस भाषा को प्रयोग मे लाना चाहता है जो उसके व्यक्तित्व को विश्वास दे।

मैं महसूस करने लगा हूँ मेरा पिछले सालो का और इन सबा सालों का अनुभव अच्छे-खासे उपन्यास की सामग्री बन गया है। उपन्यास में होता भी क्या है—चरित्र, घटनाएँ, पृष्ठभूमि। इससे ज्यादा अगर होती है तो वह गहराई जो पात्रों की अन्तर-यात्रा के माध्यम से जीवन-दृष्टियों को उजागर करती है। इन भिन्न दृष्टियो से छनकर, मिश्रित होकर एक दूसरी दृष्टि लक्षित होती है—जो लगती है [illegible] (ऑब्जेक्टिव) हो सकती है।

रोचक हरएक की जिन्दगी होती है। उसके किन्हीं घण्टे, दिनों, वर्षों की घटनाएँ उपन्यास की सामग्री हो सकती हैं, क्योंकि उसकी एक अपनी

दृष्टि होती है। वह सामान्य भी होती है।

खैर, मैं तो अपनी जान सकता हूँ, और मानता हूँ कि कोई पैठवाला उपन्यास लेखक हो, तो मेरे अनुभवों के आधार-सूत्रों को ताना-बाना बना कर अच्छा उपन्यास लिख सकता है।

एक अजीब-सी बात है। सम्पर्क बड़े सहज रूप में परिचय बनता है। लेकिन जैसे ज़रा-सा अपनत्व बढ़ता है, समस्या खड़ी होने लगती हैं। ऐसा लगता है जैसे हम एक-दूसरे को अपना नहीं रहे हों परस्पर टकरा रहे हों।

किराये का कमरा लिया था, मोह कमरे से ज़्यादा था, बाक़ी से भय था। यही कि ज़रा-सा चूका कि कमरा छूटा। आसान है क्या किराये पर कमरा मिलना।

दफ़्तर में नौकरी प्राथमिक महत्त्व की थी—बड़ी मुश्किल से मिली थी। फिर दोस्त बने—अलग भी हो गये। कमलकान्त से अतिरिक्त प्रेरणा ली तो यूनियन में फँसा। हड़ताल का अनुभव अभी तक दिमाग़ को संतुलित नहीं होने दे रहा है। फिर अवतरमानी से परिचय और घनिष्ठता अजीब जटिलताएँ पैदा कर रही है—उसका बिस्वास कैसे कतरनें-कतरनें कर दूँ।

असर्फीलाल जी के परिवार से अपनत्व बढ़ा तो सब के दावे बन गये। रत्ती ने किस तरह अपने को काबू किया, मैं नहीं जानता। लेकिन उसकी वह अभिव्यक्ति कि अगर वैसा दोबारा हो जाये तो तुम मना नहीं करोगे, ग़लत नहीं समझोगे ? मैं उस स्थिति के दोहराव की कल्पना से दहशत खाता हूँ। लेकिन वह रत्ती है—निडर और ज़िद्दी। जैसे सज्जो।

गायत्री जी अलग अपेक्षाएँ रखती हैं, उन्होंने ग़ैर को अपनत्व दिया है और यह भी चाहती हैं कि अनुपम को सही रास्ते पर चलाने का ज़िम्मा लिये रहूँ।

जत्ती ने अपना निर्णय सुनाकर मेरे हाथ के तोते उड़ा दिये। माना कि मैं उसे चाहता हूँ—वास्तव में सिर्फ़ उसी ने मेरी कल्पना की लड़की को अपनी छवि से समृद्ध किया है, लेकिन मैं उसको लेकर अपने को फ़ौरी तौर पर बहलाना नहीं चाहता।

आरती रोज़ शाम को गायत्री जी के यहाँ होती है, मैं होता हूँ तो

रोक नहीं पाता अपने को। सुरीला सब गाते हैं, लेकिन जत्ती की आवाज़ अन्दर गहरे तक उतर जाती है। जैसा रूप, वैसा स्वर, वैसा स्वभाव। मुझे डर लगता है कि वह भी कहीं सज्जो की तरह भावना के स्तर पर समर्पित न होती जा रही हो।

माँ और पिताजी सज्जो को लेकर बौखला रहे हैं। अगर उनको यह पता लगेगा कि उनका बेटा ऐसी लड़की से अपना घर बसाने जा रहा है जो शादी होने के बाद तलाक ले चुकी है तो पता नहीं हमेशा के लिए मुझ से रिश्ता खत्म कर दें। माँ क्या सह सकेंगी इस आघात को?

गायत्री जी, डाक्टर साहब, रत्ती और अनुपम किस तरह का समझेंगे मुझे और जत्ती को।

मैं चाहता हूँ जत्ती से आज़ादी से बात कर कम-से-कम अपने को तो सुलझाऊँ। जितना सोचता हूँ और उलझता जाता हूँ। यह कैसे मुमकिन है कि परिस्थितियाँ टकरा रही हों और सोचा न जाये।

बड़ी आसानी से लोग ढलाढलाया वाक्य बोल देते हैं—अतीत मरा हुआ है, भविष्य अज्ञात है, हम वर्तमान में जीते हैं। बहुत-से कहते हैं—हम आज को जीते हैं—सिर्फ आज को।

पता नहीं उनका आज, बीते हुए कल और आने वाले कल से कैसे कटा हुआ होता है, या कैसे स्वतंत्र होता है।

मेरे लिये तो नहीं है।

मैंने जत्ती से कहा—मास्टरनी हो गई हो, सो तो ठीक है, लेकिन मैं भी तुम्हारे ज्ञान का लाभ उठाना चाहता हूँ।

शोखी से बोली—तीसरी क्लास में एडमीशन ले लो। मैं उसकी क्लास टीचर हूँ और तीन पीरियड लेती हूँ।

नहीं, मुझे अध्यापिका जत्ती से काम नहीं है। मैंने कहा।

तुरन्त बोली—फिर किस जत्ती से?

मुझे कहना पड़ा—थोड़े दिन बाद तो तुम हवा में उड़ोगी।

हाँ। इतने दिन पंखों को कतर जो रखा था मैंने।

कब, कैसे मिलोगी? मैंने पूछा।

जब, जहाँ कहोगे। प्रोग्राम तो बताओ।

कल स्कूल के बाद। मैं भी दफ्तर से जल्दी आ जाऊँगा। या छुट्टी ले लूँगा।

बहाना क्या करोगी? मैंने यूँ ही पूछा।

जरूरत नहीं है। माँ से कह दूँगी, तुम्हारे साथ पिक्चर जाऊँगी। उसकी तरफ से कार्य-क्रम तय हो गया। मैं सोचता रहूँ, गायत्री जी क्या सोचेंगी।

यह कैसी स्थिति है कि गुप्त रखें तो किसी के मिल जाने, या किसी के द्वारा सूचना घर आ जाने का डर। खुलासा रखें तो ग़लत समझे जाने का डर।

दूसरे दिन मैं उसके स्कूल के निकट छुट्टी के बाद उसे मिल गया।

कहाँ चलना है? उसने चलते-चलते पूछा।

मैंने सोच रखा था उसे उसी पार्क के लिए कहूँगा, जहाँ अवतरमानी के साथ गया था। मैंने नाम लिया, तो उसने पूछा यह कौन सा पार्क है? मैं तो पहली बार नाम सुन रही हूँ।

मुझे भी अवतरमानी ले गई थी। पार्क बहुत शांत और अच्छा है।

उसने ओटो कर लिया।

मैं जत्ती को लेकर उसी जगह पहुँचा जहाँ कभी मैं और अवतरमानी बैठे थे।

उसने मुस्कराते हुए पूछा—यही जगह है जहाँ उसके साथ बैठे भी थे?

हाँ।

उसने कहा—कहो, कैसा जाना।

मैं बस मुस्करा सका। पेड़ों की छाया और एकांत अपना प्रभाव डालने लगा। शायद मन उस तरह से उठ रहा था।

जत्ती भी पेड़ों के हरियाले पत्तों में खो रही थी।

चिड़ियाँ कितनी रंग-बिरंगी हैं। वह देखो तोते। यह मोर—एक-दो …अरे, यह तो कई हैं।

जत्ती का चेहरा खुशी से थिरक उठा।

मैं उसे देख रहा था। अन्दर कहीं खुश हो रहा था।

फिर जैसे उसे खयाल आया—तुम बोल ही नहीं रहे हो।

जत्ती, मैं उस जत्ती को देखकर काफी अर्से से खुश हो रहा हूँ जिसे तुमने दबा रखा था। मैंने उसी तरह उसकी आँखों को देखते हुए कहा—जो सचमुच कोई अछूता गीत-सा गा रही थी।

तुम बहुत अच्छी जगह लाये हो। फिर वह बोली—शशि ! तुम्हीं ने मुझे मेरे उस जीवन से निकाला है जिसे मैंने अपना अन्त समझ लिया था। उस दिन मुझे तुम कड़वे लगे थे, जब तुमने मुझसे बहस की थी। मैं झल्ला उठी थी कि तुम्हें क्या हक था मेरे निजी मामले में हस्तक्षेप करने का।

मैं झल्लाने लगा हूँ कि तुम मेरे निजी जीवन में अब सरासर दखल दे रही हो। शायद मैंने सच ही कहा था।

लेकिन जत्ती क़तई दूसरे मूड में थी—मैं दूँगी। तुम बचना चाहोगे, तब भी दूँगी। क्यों मेरे नियन्त्रण को मुझ से तुड़वाया।

मुझे अवतरमानी के कहे शब्द याद आये—मैंने तुम में वह सूनापन देखा, जो कहीं मुझ में है। यह घोर अकेलापन, सूनापन, किसी अपने की माँग करता है।

मैं चुप हो गया। अवतरमानी उस दिन टूटकर रोयी थी। मैं अपराधी-सा महसूस कर रहा था अपने को उसके कमरे में।

जत्ती दूसरी तरह से मुझे उत्तरदायी ठहरा रही है।

क्या सोचने लगे ? उसने टोका।

मैं तुमसे पूछना चाहता था कि तुम क्या सोचती हो आजकल ! मैंने डरते-डरते उससे कहा। मैं नहीं चाहता था उसकी खुशी किसी तरह से भी घात खाये।

सिर्फ़ अपनी जिन्दगी को बनाने की। अपने पैरों पर खड़े होने की। और···वह बोलते-बोलते रुक गई।

और ? मैंने उसी के रोके हुए शब्द को सवाल बनाया।

तुम जानते हो। मैं एक बात पूछना चाहती हूँ उसके बाद मेरी तरफ़ से किसी भी संदेह का प्रश्न तुम से नहीं किया जायेगा। वह थोड़ी-सी गम्भीर हुई।

पूछो ?

मेरी पिछली ज़िन्दगी, या मेरा तलाक लिये होना तुम्हारे लिए मुझे अयोग्य तो नहीं बनाता ! तुम यह तो नहीं सोचते कि···वह फिर रुक गई।

नहीं। बल्कि मैं तुम्हे हृद से ज्यादा चाहता हूँ। अगर मेरा बस चले तो मैं तुम से बिना हिचक के शादी करूँ। पर इतना आसान नहीं दीखता। मैं मन की सच्चाई कह गया।

बस शशि ! यही एक संदिग्धता थी जो मुझे किसी अंश मे चुभती थी। हालांकि मुझे विश्वास था मुझे यही उत्तर मिलेगा।*इतना कहकर वह फिर अपनी उसी खुशी में लौट आई।

मेरा जी चाह रहा है शशि···अपना हाथ दो। उसने मेरा हाथ अपने हाथ मे लिया और आँखें मूँदकर चूम लिया। फिर वह उसे अपने माथे तक ले गई। फिर उसने अपने सिर पर रख लिया।

मैं अपने से छूट नहीं पा रहा था। बस उसे देख रहा था।

वह किस हिस्से मे मुक्त हुई थी कि भावुकता और भावना की शिखर पर पहुँच गई थी। वह शिखर मेरे लिये अनजान था—शायद वह शिखर मुझ में है ही नहीं। होगा तो अभी ढका है बीहड़ जंगलों से। पता नहीं कब पहचानकर उसकी राह टोहूँगा।

जत्ती की तन्मयता टूटी तो उसने आँखें खोली। मेरा हाथ धीरे-से छोड़ा।

शशि ! उसने मुझे देखते हुए कहा।

हाँ।

एक बात सुन लो। मैं जानती हूँ हमारे रास्ते में बाधाएँ आएँगी। लेकिन मैं तुम्हें विश्वास दिला सकती हूँ—होऊँगी तो तुम्हारी, वह भी इज्जत के साथ, वरना जिन्दगी भर ऐसी रहूँगी। मेरा विश्वास बनाये रखोगे ना ?

हाँ। मैं हामी भर रहा था।

जब वक्त आयेगा, तभी हम इस सम्बन्ध को बनायेंगे। उसने कहा। और इसी के साथ जोड़ दिया—अब के बाद ऐसे एकांत से बचेंगे। हमें खेल नहीं बनना है।

अपने को समझा रही हो या मुझे ? मैंने हँसते हुए चुटकी ली। दोनों को। अभी जो थी, वह मेरी भावुकता नही थी—वह समर्पण था, जिसे एक बार लेकर गई थी, समेटकर ले आई थी। आज वह तुम्हें सौंपकर निश्चित हो गई।

हम काफ़ी देर तक बैठे रहे। पहली बार आया था, तब मेरे अन्दर का पुरुष आहत हुआ था। अब की वह संकल्प मे सहर्ष बँध गया। समर्पण ने समर्पण मे अपेक्षाएँ की हैं— करना संगत है।

मैं दफ़्तर मे यूनियन के कार्यालय जाया करता था। जब से वहाँ जाना बन्द हुआ तो खाली-खाली लगने लगा। हड़ताल चल रही है, इतनी सूचना थी, पर स्थिति क्या है, वह वहाँ जाये बग़ैर नही पता लग सकता था। मैं कमलकान्त से मिलने को उत्सुक था। पर वह भूमिगत था—अता-पता मिलना मुश्किल था। वैसे भी उसके सिवाय किसी अन्य साथी से इतनी घनिष्ठता नही बनी थी कि वह विश्वास के साथ बात बताता।

एक चीज़ और पाई मैंने। फ़ील्ड मे काम करने वाला थोड़ा-सा भी पहचान रखनेवाला शख़्स, कार्यालय मे काम करनेवाले से अपने को श्रेष्ठ समझता है। बहुत-से सिर्फ़ उसे बाबू मानते हैं।

मुझ से रहा नही गया। मैं दफ़्तर मे उस तरफ़ गया जिस तरफ़ वह कारख़ाना था जहाँ हड़ताल चल रही थी। करीब बीस-पच्चीस मिनट लगे पहुँचने मे।

कारख़ाने के फाटक में ताला था लगा। बाहर फ़ासलो पर दो तम्बू लगे थे। दोनों मे मज़दूर मौजूद थे। अलग-अलग तम्बुओं पर संगठन के नाम के बैनर लगे थे।

वैसे शान्ति थी। बंदूकधारी पुलिस का जवान फाटक के पास था। उत्सुकता मे आ गया, लेकिन पहचानी हुई शक्ल नज़र नही आ रही थी।

सोचा सामान्य आदमी बनकर स्थिति पता लगाऊँ। सड़क पर कई चाय स्टाल थे। एक के सामने बैठ गया। चाय का ऑर्डर भी दे दिया। चार मज़दूर पहले से बैठे थे—दो और आ गये।

हड़ताल की बात चल रही थी।

मालिकों के पसीना छूट रहा है। देखना दो-चार दिन मे समझौते पर आ जायेंगे।

यह सांप हैं—सांप; इन पर भरोसा नहीं करना चाहिए। यह तभी जीभ निकालते हैं, जब फन एडी से दबे।

सोचते थे, हड़ताल तोड लेंगे—इनके बाप आ जायें तब भी नहीं तुड़वा सकते।

अच्छा हुआ, हमारा आपस में समझौता हो गया।

मैं सुन रहा था। समझने मे देर नहीं लगी कि दोनों यूनियन मिल गई हैं।

पुलिस क्या अब भी नेताओं की गिरफ्तारी कर रही है? मैंने पूछा।

कैसे करेगी। हम जमाई जो लगते हैं उनके।

तू हर वक्त ऐंठ के क्यों बोलता है भग्गा। बाबूजी वैसे ही पूछ रहे हैं।

ठीक है, पर तू भी मूरख है। मालिक ऐसों को ही एजेंट बनाकर हमारे हौसलो का पता लगाने भेजता है। मान लो यह सफेदपोस सी० आई० डी० का आदमी हो तो? भग्गा अपनी अक्ल की तेजी का सबूत दे रहा था।

निश्चित रूप से मैं फक पड गया। हिम्मत नहीं हुई कि उनसे यह भी कह सकूं मैं वह नहीं हूं, जैसा वह सोचते हैं।

चाय का गिलास लिये चाय गिटकने-सा लगा।

अपने लोग भी गुस्से के सुअर हैं। खून फौरन आंख मे उतर आता है। एक ने कहा।

नहीं उतरे क्या? इधर हड़ताल, उधर घर मे भूख। फिर यह पता लगे कि सामने वाले मालिकों की जूती चाटने जा रहे हैं। दूसरा बोला।

यह सब चालाकी इन मालिकों की होती है। साले हमे लड़ा देते हैं। भग्गा था।

पुलिस भी हरामजादी है। रुपया खाती है, हमारी खिलाफत करती है। चौथा बोला।

कभी सुना, कारखाने के मालिकों को गिरफ्तार होते या लाठी खाते।

कानून वह नहीं तोड़ते—जैसे हम ही क़ानून तोड़ते हैं। यह दूसरा मजदूर था।

मुझे मौका मिला, पैसे चुकाकर चल दिया। चलते-चलते उसी भग्गा की टिप्पणी सुनाई पडी—मैं कह रहा था। सी. आई. डी. का आदमी था। पुलिस को गाली दी, कैसा दुम दबाकर भागा।

अब मैं कहाँ जाता। अजीब कोफ़्त हो रहा था। लेकिन अपने को समझाया, उनका कहना और सोचना गलत कहाँ था। मेरे माथे पर तो नहीं लिखा था, मैं कौन हूँ। याकि उन्ही से सहानुभूति रखने वाला हूँ।

पर यह संतोष हुआ कि हड़ताल किनारे पर है। इससे भी ज्यादा यह सतोप मिला कि आपसी लाठी-बाजी, छुरे-बाजी नही होगी जो इन्ही को उजाड रही थी।

जानते हुए भी कि सघर्ष एकता चाहता है टुकड़े-टुकड़े में क्यों बँटे हैं श्रम सगठन ? राजनीतिक दल क्यो अपने-अपने श्रमिक सगठन बनाये मजदूरो को फाँटते है ?

मैं सोचकर चला था अगर परिचित कोई मिल गया तो उस बस्ती में जाऊँगा जहाँ वारदात हुई थी। देखूँगा कि उनका क्या हाल है जो घायल हुए थे। या जो जेल गये हैं, उनके परिवारों की क्या व्यवस्था हुई है।

लेकिन इस अनुभव ने दूसरी तरह से चौंका दिया। अकेला जाता हूँ, और गलत समझ लिया जाता हूँ, तब दूसरी तरह की परेशानी मे पड़ सकता हूँ।

मैं घर की तरफ चल दिया।

ऐसी कैसी स्थिति है अन्दर की किसी तरफ उत्साह से बढ़ता हूँ—फिर लगता है यह फ़ालतू की भावुकता है। दोनों मे से किसी एक स्थिति को नही अपना पाता।

इच्छा हुई कि किसी होटल में अच्छा-सा, मन की ख्वाहिश का खाना खाऊँ।

होटल पहुँच गया।

सूची देखकर मन की सब्जियाँ मँगाई, मिठाई मँगाई, दही मँगाया। तृप्ति से खाया।

पसन्द के रिकार्ड कहकर लगवाए और सुने ।

और इसी क्षण यह भी तय किया कि कल टेप खरीदूंगा । इस तरह की उकताहट और ऊब को हटाने का सहारा टेप हो सकेगा ।

कमरे मे आया तो मन हल्का था । भर तबीयत खाने की तृप्ति थी। कपड़े बदले, लेट गया । पड़ा रहा इसी तरह ।

इच्छा हुई कि ऊपर चला जाऊं । वही गप्प लड़ाऊंगा । सोच रहा था कि नीचे से किसी के चढ़ने की आवाज हुई । अनुपम था । मुझे देखकर अन्दर आ गया ।

कैसे लेटे है ? तबीयत तो ठीक है।

वैसे ही लेटा था । कहां से आ रहे हो ? बैठो ।

वह कुर्सी खींचकर बैठ गया ।

मैंने म्यूजिक क्लब ज्वाइन कर लिया है । यह क्लब कल्चरल प्रोग्राम देता है ।

कोई इन्स्ट्रूमेण्ट सीख रहे हो ?

हां, ड्रम । वैसे गाने प्रस्तुत करने का अभ्यास कर रहा हूं । हम दो गायक हैं—लड़के । एक मीनाक्षी भी है ।

क्रिकेट छोड़ दिया ? मैंने पूछा ।

छोड़ दिया । एलेविन मे नही लिया । अपनों-अपनों को लेते है ।

मैं हंसा । फिर क्रिकेट के खिलाड़ी कैसे बनोगे ?

नही सही । तभी तो इस क्लब मे शामिल हुआ हूं । प्रोग्राम दूंगा। प्लेबैक सिंगर बनूंगा ।

मैं कल टेप ला रहा हूं ।

अनुपम उछल पड़ा । गुड-गुड ! मैं अपने कैसेट भरूंगा । गानो की कॉपी करने मे मदद मिलेगी । आप इस्तेमाल तो करने देंगे ?

हां, अगर परवाह न करोगे । मैंने सावधान किया ।

आपको मेरे पहले कार्य-क्रम में चलना होगा । वह पब्लिक शो होगा । मम्मी को, दीदी को सब को ले जाऊंगा ।

मैंने छेड़ा—रत्ती को ?

वह भी जायेगी । चलिए ऊपर चलिए । मैं यह न्यूज सब को सुना-

ऊँगा। वह खड़ा हो गया। मुझे भी हाथ पकड़कर उठा लिया।

दरवाज़ा उढककर हम ऊपर गये।

एक न्यूज़। मस्तीवाली न्यूज़। दीदी आओ। रत्ती आओ। मम्मी आओ।

क्या है घर में हडकम्प मचा दिया। जत्ती कहती हुई आँगन में आई।

रत्ती भी निकल आई।

आप मना नही कर सकते हैं। जत्ती ने मुझसे कहा।

तुम कर तो रही हो। मैं मुस्कराया।

यह कैसे मना कर सकते हैं। इन्ही की न्यूज़ है। कल यह टेप ला रहे हैं। अब हम सब नये-से-नये, ताज़े-से-ताज़े गाने सुन सकेंगे। वी कैन कॉपी देम…।

और वह सच में डिस्को के नाच की नकल करने लगा।

रत्ती को मौका मिला—यह दिन-पर-दिन बदतमीज़ होता जा रहा है।

मेरा प्रोग्राम देखोगी तो दाँतो तले उँगली दबा लोगी। अनुपम ने अकड के साथ कहा।

यह नया शौक और चर्राया है। जत्ती ने व्यंग्य किया।

डेडी आयेंगे, तब देखना। रत्ती बोली।

मैं पर्मीशन ले लूँगा। यह कला है। मम्मी को मेरी तरफ़ से पैरवी करनी पडेगी।

वह छूट रसोई मे गायत्री के पास गया—मम्मी, वायदा करो तुम मुझे इजाजत दिलवाओगी। शहर में मेरा नाम होगा—फिर दूसरे शहरों में।

गायत्री जी से 'हाँ' की गर्दन हिलवाकर लौट आया।

एक आइडिया आया है। क्या आप उसका समर्थन करेंगे? वह मेरी तरफ मुड़ा।

क्या? मैंने पूछा।

आज हम म्यूजिक कार्य-क्रम करेंगे। हम सब गायेंगे। आपको भी शामिल होना होगा।

मेरा समर्थन है। अगर सब तैयार हो।

नहीं होगा। जत्ती ने विरोध किया।

बुरा क्या है। तुम लोग सब कितना अच्छा गाती हो। मम्मी भी।

यह कोई ढंग है। जत्ती ने गर्दन को झटका देते हुए कहा।

आज हो ही जाय दीदी, यह बहुत टर्र-टर्र कर रहा है। रत्ती ने ऐसे लहजे में कहा जैसे प्रतियोगिता के अखाड़े में उतर रही हो।

मम्मी से पूछ। आई बड़ी कि आज हो ही जाये दीदी।

मम्मी को मैं मना लूंगा। मेरी खुद की इच्छा थी। मैं बोल पड़ा।

आप भी बच्चे बन गये। जत्ती ने व्यग्य किया। व्यग्य मे लिपटी स्वीकृति थी।

बूढ़ा तो हूँ भी नहीं। मेरे पास चुक कहाँ थी।

बस तय। अनुपम ने जैसे अन्तिम निर्णय दे दिया।

इसके बाद पहले कामो मे निबटने का क्रम बना—मम्मी खाना बना लें, फिर आरती, फिर खाना खाने का काम, फिर चटपट बर्तन धोना जत्ती और रत्ती द्वारा। उस बीच अनुपम दरी बिछायेगा। काफी दिनो से बद हारमोनियम और तबले निकालेगा।

मुझे खाने के लिये कहा गया, जिसकी एवज में मैंने लज्जतदार भोजन करने की होटल-कथा कही। रत्ती ने ताना मार दिया—अकेले-अकेले मिठाई खा आये। पेट मे दर्द होगा।

समय काफी था। मैं अपने कमरे मे आया। कपड़े दोबारा पहने। बाहर जाकर सबके लिये मिठाई लाया। यह मेरी ओर से गुप्त कार्य-क्रम था।

यह आयोजित आकस्मिक संगीत कार्य-क्रम था। मुझे पहली बार पता लगा गायत्री जी, जत्ती, रत्ती, अनुपम चारो हारमोनियम और तबला अच्छा बजाते हैं। सुरीली आवाजों का कायल मैं पहले से था।

मुझसे भी आग्रह किया। मैंने सुनाया तो, लेकिन वह ऐसे था जैसे सधे वाद्य-यन्त्रो की धुन के बीच किसी नौसिखुवे का अपना तार-यन्त्र टुनटुनाना।

लेकिन सम्मिलित परिवार का एक अजूबा आनन्द रस था जो विरलय मिलता है—मेरे लिये यह नायाब अनुभव था।

मुझे वास्तविकताओं के बीच गुजरते अचानक एक अनुभूति हुई। वह सत्य बनकर जैसे मेरे दिमाग से चिपट गई। उसका जिक्र मैंने अवतरमानी से किया। सुदर्शन चार दिन के लिये आया था, उससे किया। मैं जत्ती से भी करना चाहता हूँ।

मुझे जत्ती से ऐसी बात कहने में अक्सर हिचकिचाहट होती है। वह बड़े मीठे तरीके से मेरा मजाक बनाती है और अन्तिम टिप्पणी करती है—बड़ी दूर की कौड़ी लाये विचारक जी।

वह विचारक कहती है तो मुझे ऐसा लगता है जैसे उसने सीटी वाला खिलौना मेरे सामने लाकर बजा दिया हो। फिर अपनी शोखी और शैतानी पर हँस रही हो।

फिर कहती है—यह अनुभव मेरा है, चुराकर अपनी मुहर ठोक रहे हो।

मुझे चिढाने के लिये कहे, लेकिन पता नही क्यों मुझे उसका यह पेटेंट व्यवहार, अखरता नही। उसका कहा, बुरा भी नही लगता।

मैं बहुत उलझा हुआ और अपने को तीव्र संवेदनाओं वाला मानता हूँ। यह भी मानता हूँ कि मुझ में कुछ करने की हौंस हमेशा रहती है। लेकिन दूसरी स्थिति भी है। लड़ूँ चाहे कितनी हिम्मत से, पर पहले-पहल घबराहट उठती है। ऐसा भी लगता है—सब इतना बिगड़ा हुआ है बाहर कि दाँव नही चलने देगा।

पर जूझता भी हूँ, सफल भी होता हूँ।

मैं जिस सत्य की बात कर रहा हूँ वह हर शख्स के व्यक्तित्व की अपनी-अपनी लय है। यह है, पर यही, विरोधी परिस्थितियो मे—चाहे वह क्षणों की हों, दिनों की, वर्षो तक बनी रहने वाली—बिखरती, सामान्य गति से हटती-भटकती है। व्यक्ति इसकी विषम स्थिति बर्दाश्त नही कर पाता। फिर-फिर सही स्वरों मे लाने की कोशिश करता है।

यह लय लम्बी बीमारी नही झेल सकती। मैं तो यही पाता हूँ कि किसी-न-किसी तरह से इसे ताल-सुर में ले ही आते हैं। वरना यह उनका विध्वंस कर दे। आस-पास, दूर-दूर तक, तोड-फोड़ मचा दे।

लेकिन क्या यह अपने मे स्वतंत्र, स्वायत्त है? लय से लय, लय से

लय जुड़ती, सम्वर्धित नहीं होती !

सुदर्शन आया तो पहले वह काफ़ी अबोला रहा। फिर मेरे कहने पर झिझक छोड़ी। वहाँ के हाल-चाल बताये। यह बताया कि वह इम्तिहान दे चुका है। उसकी माँ का दवाब है कि सज्जो से जल्दी शादी कर ले। घर में बहू-सी आए।

सुदर्शन का परिचय मैंने गायत्री जी के परिवार से करवाया। दो दिन में घुलमिल गया।

मेरी, सुदर्शन की और जत्ती की विशेष बैठक हुई। विचार किया गया कि क्या तरीका अपनाया जाये।

गायत्री जी से मैंने छिपाया नहीं। उनसे भी राय चाही। मुझे आश्चर्य हुआ वह सिर्फ सहमत ही नहीं थी, बल्कि इस बात के लिये तैयार थी कि जरूरत पड़ने पर वह कैसी भी भूमिका अदा कर सकती हैं। मुझे निश्चित रूप से साहस मिला।

मेरी इच्छा थी सुदर्शन को अवनरमानी से मिलाऊँ, लेकिन मैं पा रहा था जिस दिन मैं उसके घर गया था उसके बाद से वह मुझ से बहुत सीमित हो गई थी। दफ्तर में बोलती-चालती पहले की तरह थी, पर वैसी गरमाहट नहीं थी उसके व्यवहार में। वह ठंडी-ठंडी, बुझी-बुझी-सी हो गई थी।

मैंने सुदर्शन से मिलवाने से पहले उसे सामान्य करना चाहा। वैसे भी मैं उसकी उदासीनता सह नहीं पा रहा था।

मैंने उसे लंच टाइम में कैण्टीन चलने को कहा।

वह तैयार हो गई। कैण्टीन में हमने अलग मेज घेर ली।

मैं तुम्हें कल अपने घर ले जाना चाहता हूँ।

घर ! वह चौंककर देखने लगी। फिर मुस्कराई।

तुम्हें सुदर्शन से मिलवाना चाहता हूँ। वह, जिससे सज्जो की शादी होने जा रही है। वह आया हुआ है।

तुम्हारे माँ-पिताजी तैयार हो गये ?

कुछ-न-कुछ तो करना होगा। मुझे जाना भी होगा कम-से-कम पन्द्रह दिन के लिये।

ठीक है, चली चलूंगी। पर मुझ से मिलवाकर क्या करोगे। उसने

ठंडी-सी साँस ली ।

अवनरमानी ! तुमने यह क्या रवैया अपना रखा है ? मैं तुमसे यह नहीं पा रहा हूँ ।

कैसा ? वैसा ही तो है, जैसा मुझे रहना चाहिये । वह नीचे की तरफ़ देखने लगी ।

लड़के ने आकर पूछा—क्या लाऊँ जी ?

दो कॉफी ! वह काउण्टर तक चला गया ।

मुझे तकलीफ होती है, तुम्हें ऐसा देखकर । सिर ऊपर करो । मेरी तरफ देखो । मैंने उससे कहा ।

नहीं । देखने से कमज़ोरी आती है ।

तुम्हें मुझसे शिकायत है ?

अपने से । सिर्फ अपने से । मुझे क्या हक़ है कि किसी का अपने लिये उपयोग करूँ । वह बोल पड़ी ।

मैं पलभर के लिये ठिठका । फिर साहस करके बोला—आपसी बातों को इस कदर गहराई तक लेते हैं । अगर मुझ में यही होना तो क्या जरूरत थी सुदर्शन से मिलाने की । मेरी अपनी हो इसीलिये तो ।

लड़का कॉफी के प्याले रख गया ।

उसने मुझे देखा । बोली—कॉफी पियो ।

मैंने प्याला उठा लिया ।

फिर वह उसी तरह गहरी देखते हुए बोली—क्या सच में ऐसा महसूस करते हो !

मैं झूठ बोला हूँ क्या कभी ?

नहीं । मुझे तुम्हारी हर बात पर विश्वास है । उसे तोड़ना भी नहीं चाहती । चाहे तुम मुझे किसी तरह की समझो । उसकी आँखों में मेरा परिचित अपनत्व झलक आया ।

तो मुझे गलत क्यों···

मैं आगे नहीं बोल पाया । उसने फौरन रोक दिया । बस, अब नहीं बोलोगे ।

और जब मैं और वह उठे तब चुप थे । जैसे, मैं कुछ सँजो रहा था ।

जैसे वह अपने अन्दर मुस्करा रही थी, जिसकी झलक उसके होठों पर थी। चेहरे पर थी। हम आकर अपनी-अपनी मेज पर बैठ गये।

गायत्री जी का घर—मैं इसे डाक्टर असर्फीलाल के घर से नहीं पहिचनवाना चाहता—एक तरह से 'सुख-विला' है। लोग तो मकानो, बगलो के नाम इस तरह के रखते हैं, मैंने इतने महीने रहकर यह महसूस किया कि यह अन्दर से ऐसा है। बडी मुश्किल से ऐसे घर मिलते हैं जहाँ उत्साह मिले, शान्ति मिले, सुख मिले। इसका श्रेय मैं गायत्री जी को देता हूँ।

सुदर्शन को इस तरह घर मे मिलाया गया जैसे वह यही का सदस्य हो, उसने चलते-चलते कहा—भाई साहब, यह लोग सब कितना अपनत्व रखते है।

अवतरमानी पहली बार आई। उसकी भी लगभग यही प्रतिक्रिया थी।

एक होती है दिखावट। वह शिष्टाचार से ढकी हुई बनावटी और अस्थाई होती है। जैसे मेरा घर। वह कहने को पिताजी का है, लेकिन वास्तव मे न पिता का है, न माँ का, न मेरा, न सज्जो का। वहाँ कलह है, विभक्त इकाइयाँ हैं। विच्छिन्नता है कि जोड के बिन्दु दीखते नही। बात-बात की स्थाई खींचातानी है।

ताज्जुब नही यह घर मुझे अपने नजदीक लगने लगा। गायत्री जी सुलझी हुई माँ-सी लगने लगी।

वह कभी-कभी नाम लेने के बजाय बेटा कह देती हैं, तब बडा अच्छा लगता है।

अनुपम के नशे की लत मे पड जाने पर उन्होने जब सख्त रुख अपनाया था तब मैं भी डर गया था। मैं अपनी तरह से सोचने लगा था। लेकिन उनकी सख्ती कारगर सिद्ध हुई। अनुपम एक तरह से खत्म हो जाता। बच गया।

गायत्री जी का इतना कहना कि सुदर्शन अच्छा लडका है। अगर तुम्हारे माता-पिता नही मानें तो तुम यहाँ ले आना दोनों को, मैं मदद करूँगी शादी मे, मेरे लिये महत्त्वपूर्ण हिम्मत साबित हुआ। सुदर्शन भी

उत्साही होकर गया है ।

मूल समस्या अभी सम्भावनाओ का मुँह खोले खड़ी है । जिद पर मुझे डटना है—प्रतिक्रिया माँ और पिताजी की तरफ से आनी हैं । सज्जो ने लिखा था पिताजी कह रहे थे, देखूँगा मेरे होते हुए कैसे करता है । उनके परिचय का अपना जाल है, वह मुझे नालायक और कुपुत्र साबित करना चाहेंगे । करें, मुझे इसकी परवाह नही है—उनकी नजर मे मैं तब भी नालायक था जब बेकारी भुगत रहा था । अब भी हूँ जब सज्जो के लिये उनकी खिलाफत कर रहा हूँ । तब तो बिल्कुल नालायक हो जाऊँगा जब जत्ती से शादी करने की बात खोलूंगा । वह कहेंगे—थू-थू ऐसी लडकी जिसको पहले पति ने छोड दिया । और अगर मैंने कहना चाहा पति ने नही छोड़ा है, उसने छोड़ा है तो सीधी टिप्पणी होगी—निहाल करेगी आकर ।

लेकिन यह तो मैं सोच रहा हूँ । उनके पास कुछ भी सुनने का धैर्य कहाँ है ? सीधी प्रतिक्रिया होगी—हमे क्या सुना रहा है । उस लड़की की माँ ने और उसने फँसाया है, बाप ससुरा घरजमाई रखना चाहता होगा ।

मुझे चिंता माँ की है । उसकी ममता और मानसिकता मे सतुलन कैसे बिठाऊँ ? सज्जो को लेकर वह टूट रही है—पहले इस स्थिति से तो समझौता करे ।

सबसे बड़ा डर है बाहरी बावेले का जो पिताजी खड़ा कर सकते हैं । घर की दीवारो में सब कुछ हो जाये, वह अन्दर दबा रह सकता है—जैसी अभी तक की हालत है । लेकिन झगड़ा बाहर फूट कर फैले, तो उसमे वह भी हिस्सेदारी लेने लगते हैं जिनका कोई दखल नहीं होना चाहिये । उनके लिये वह महज चरपरी घटना है जिसमे चटखारे लेना उनका स्वाद-धर्म है ।

मैं सारी सम्भावनाओ को ऊँच-नीच मस्तिष्क में रखकर जाना चाहता हूँ, पर यह कब निश्चित है कि वह मेरे अनुमान के मुताबिक सामने घबराहट मुझ मे है, आश्वस्त मैं कितना भी अपने को म विवेक से नही, भावनाओं के आवेश से सामना हो, वहाँ कौन-स खड़ी हो जाये पता नही चल सकता ।

सारा झंझट विचारों के भेद का है जो भावना और आवेश की शक्ल [illegible]

ए

के

रहा है। माँ मेरे केन्द्र मे भी गहरी गुथी है। उसको कैसे खडा रख पाऊँगा।

ऊहापोह के बीच मैंने सारा सफर काटा। अपने पहुँचने की सूचना मैंने जानकर नही दी थी। सज्जो को सुदर्शन से इतना पता चल पाया होगा कि मैं जल्दी ही आऊँगा।

सही है कि चलने से पहले बार-बार कमजोर पड़ रहा था, इसलिये जत्ती और अवतरमानो से तरह-तरह से बात करता था। यह एक प्रकार से हौसला जुटाने का प्रयास था।

मैं जब अचानक घर के दरवाजे पर पहुँचा और कुंडी खटकाई, तब माँ ने दरवाजा खोला।

कैसे आया ? ठीक तो है ? वह ताज्जुब से मुझे देख रही थी।

वैसे ही। घबरा क्यों गई ? मैंने अटैची अन्दर रखी, ताँगे वाले को पैसे चुकाये।

आने का खत तक नही डाला। मैं आँगन मे खडा था। माँ अभी भी सामान्य नही हो पा रही थी। मुझे टकटकी लगाकर देखे जा रही थी।

छुट्टी मिलने का विश्वास नही था। मिल गई, तो चल दिया। पिता जी कहाँ हैं ?

मन्दिर गये हैं। आजकल यह रोग और पाल लिया है। सुबह-सुबह निकल जाते हैं। बरामदे की कुर्सी पर बैठ, मैं चाय बनाती हूँ। माँ रसोई मे चली गई।

मैंने कमरे मे अटैची रखी। गुसलखाने मे गया—हाथ-मुँह धोया। चलने वाले दिन रिजर्वेशन की कोशिश की थी, नही मिला। रात-भर बैठे-बैठे आना पड़ा। थकान से शरीर टूट रहा था। बरामदे मे दीवार से लगी

खाट खड़ी थी। बिछाई, लेट गया।

माँ चाय बना लाई।

ले। वह गौर से देख रही थी। तू दुबला हो गया। फिर अपने-आप बोली—होना ही है। न खाने का ढंग, न रहने का। माँ कुर्सी उठा लाई, पास बैठ गई।

तुम तो ठीक हो? मैंने चाय पीते हुए पूछा।

मुझे क्या होना। पत्थर की हूँ, बुखार तक डरकर भागता है। छोटे-मोटे दर्द को धारती नहीं। अच्छा हुआ आ गया। इन दिनों याद ज्यादा आ रही थी। जाने कैसे उल्टे-सीधे सपने दीखते थे।

तुमने खत लिखवाना भी बंद कर दिया। जब से गया, एक भी पत्र नहीं आया। मैंने साधारण तरीके से कहा था, पर लगा मैंने क्यों कहा।

माँ ने सहज भाव से जवाब दिया—क्या लिखती। तुझे लिखकर क्यों परेशान करूँ। सब ठीक है। अपनी-अपनी सब अपनी तरह से भुगतते हैं सो मैंने भी यही सोच लिया। दिल की निकाल लेने से हालत कौन-सी बदल जाती है। तू बता, नौकरी तो अच्छी तरह चल रही है। खाने का क्या हिसाब कर रखा है? रुपये-पैसे भी जमा करता है या सब उड़ा देता है।

कुछ तो किये हैं, लेकिन खर्चा बहुत हो जाता है। मैंने प्याला फ़र्श पर रख दिया।

अकेले आदमी के खर्चे में दो प्राणी और पल सकते हैं। तकलीफ-की-तकलीफ और खर्चा ज्यादा। माँ ने जैसे अनुभव का सबूत दिया है।

अब तुम चलो मेरे साथ—एक-दो महीने रह आना। मैंने कहा।

इनको किस पर छोड़ूँ। सज्जो जो गले की जंजीर बनी है। फिर तू तो चला जायेगा दफ्तर—मैं अकेली क्या करूँगी।

तुम बिल्कुल अकेली नहीं रहोगी। मैं जिनके घर में रहता हूँ, वह बहुत अच्छे लोग हैं। मुझे घर का समझते हैं।

हाँ, तूने पहले भी शायद कहा था।

तब और अब में बहुत फर्क है। रहते-रहते घर का हिसाब हो गया। उनके दो बेटियाँ हैं, एक बेटा। गायत्रीजी बहुत लाड़ रखती हैं—तुम्हारी

तरह।

अच्छा है। कोई तो रखे। तू खाना भी उन्ही के यहाँ खाता है ?

नहीं। उन्होने ज़िद खूब की, लेकिन मुझे नहीं जँचा। कभी बना लेता हूँ, कभी होटल मे खा लेता हूँ—चल जाता है।

दरवाज़ा खुलने की आवाज़ आई।

आ गये शायद ! माँ खड़ी हो गई।

पिताजी ही थे।

दादि आया है। माँ को कहते सुना।

क्यो ?

छुट्टी मिल गई, सो आ गया। क्यो क्या।

मैंने खड़े होकर नमस्ते की। पिताजी ने स्वीकृति मे गर्दन हिलाई।

नौकरी ठीक चल रही है ?

जी।

वैसे ही कैसे आ गये ? यूँ तो आने वाले नहीं हो।

तुम कभी सीधे मुँह बात करोगे। इतने दिन बाद आया है। देखो कितना दुबला हो गया।

मैं चुप रहा।

हूँ। तुम देखो और खुश होओ। वह अपने कमरे मे चले गये।

वही तनाव। वही उपेक्षा।

तुम बुरा मत मानना। पता नही किस अकड में ऐंठे रहते हैं।

बुरा क्या मानूँगा। आज तक कभी ढंग से बोले हैं। समझते हैं, पहले की तरह सहता रहूँगा।

मैं क्या करूँ—मैं भी तो सहती हूँ। कहाँ छोड़कर चली जाऊँ।

तुम अगर न हो तो किसलिये आऊँ ? मुझे सच में गुस्सा आ गया।

अभी तो हूँ—गुस्सा मत कर। यह पहले से भी ज्यादा चिड़चिड़े हो गये हैं। सज्जो फूटी आँख नही भाती, जैसे तू नही भाता था। उसने भी आम्पीरी उठा रखी है। यहाँ रुका तो उस लड़के के घर जाने लगी। कहने वाले कहते हैं, कोई जुबान पकड़ सकता है।

फिर करते क्यों नहीं उसकी शादी ? जमा कर रखी है रकम उसकी

शादी के लिये ? कोरी ऐंठ से क्या होगा। कल भाग गई तो ? कहने को मैं तिलमिलाहट में कह गया, लेकिन देखा, माँ सुस्त हो गई। मुझे दुःख हुआ। अभी साँस भी नहीं ली थी, विषय छेड़ दिया।

क्या करता ? पिताजी की हद की उपेक्षा—बल्कि अशिष्टता, बर्दाश्त नहीं हुई। समझ सकता हूँ यह उनकी अपने को सुरक्षित रखने की बचाव-युक्ति है।

तू नहा-धो ले, मैं खाने की तैयारी करूँ। माँ रसोई की तरफ़ चली गई जैसे खड़खड़ाहट से डरी हुई चिड़िया घोंसले में घुस गई हो।

मैं उसी खाट पर लेट गया।

एक अभ्यस्तता होती है तनाव में रहने की। मजबूरी जिसे स्वीकार करके उसके अनुकूल बना देती है। तब कोई चारा नहीं था। उपेक्षा पाने के बावजूद भी रहता था। उकताहट रहते हुए भी, घर। घर लगता था। इस वक्त ऐसा लग रहा था जैसे अनचाहे मेहमान की तरह हूँ। कोई नहीं चाह रहा है, फिर भी जबरन दखल करने के लिये उतारू हूँ।

पड़ा रहा। क्या-क्या सोचता रहा। झपकी आ गई।

सज्जो जगा रही थी—भैया ! भैया !

हूँ। मैं चौंका।

उठो ! नहा-धो लो। खाना तैयार है।

मैंने घड़ी देखी। शायद घंटे से ज्यादा सो लिया था। सज्जो खड़ी थी, तो खयाल लौटा—अरे, मैं यहाँ हूँ।

कब आई ?

देर हो गई। तुम गहरी नींद में थे, जगाया नहीं।

मैंने गौर से देखा, सज्जो पहले से कमजोर हो गई थी। उसके चेहरे पर सूखापन-सा मौजूद था। अजीब थिरता।

मैं उठा। खड़ा हुआ। पेंट में से चाभी दी। अटैची से कपड़े निकाल ला, पायजामा, बनियान, शर्ट।

सज्जो कमरे में गई। मैं गुसलखाने में आ गया। कैसा सन्नाटा है घर में ! कैसे रहती होगी सज्जो ?

फिर अपने आप ही एकतरफा और खुद के माध्यम से माहौल को

महसूस करने वाले विचारों पर हँसी आई। यहाँ से पीछा छूट गया है तो क्या यह भी भूल गया अपने-अपने मे हद-बंदी बाँधे लोग धर्मशाला या होटल मे कैसे रहते हैं।

रह पाने की हजार युक्तियाँ हैं। मुझे भी रहना है—जब तक समस्या को हल तक नही ले आता।

सज्जो कपडे ले आई। मैंने अपने को गुसलखाने में बद कर लिया। बनियान उतारी। धोई। फिर बाल्टी से मग भर-भरकर अपने पर उँडेलने लगा।

घर से लौटे हुए चार दिन हो गये। यहाँ आया तो सब उत्सुक थे जानने के लिये कि क्या निर्णय निकला। सरसरी तौर पर बता दिया—माँ किसी तरह मान गईं, पिताजी अड गये। गायत्रीजी को बताया—रास्ता यही निकला *कि शादी यहाँ से ही करनी होगी। न माँ आएगी, न पिताजी।* सुदर्शन तैयार हो गया है। आठ-दस दोस्तों के साथ आकर यहाँ से शादी करके जाएगा, फिर वहाँ अपने मुताबिक रस्मो के साथ शादी को घोषित करेगा।

गायत्रीजी ने पूछा—वहाँ दोबारा झंझट करने की क्या जरूरत है ?

मैंने बताया—उसकी माँ का आग्रह है।

लेकिन अभी भी हालात सहज नहीं हैं, रुकावटें पड़ेंगी। गायत्रीजी ने अपने अनुभव से कहा।

जी, लेकिन अगले महीने तक शादी करनी पडेगी। झगडे को खींचा नहीं जा सकता। मैंने गायत्रीजी की चेतावनी को स्वीकारते हुए अल्प समय मे व्यवस्था की दिक्कत बताई।

वह तो दीख रहा है। गायत्रीजी ने सहज दृढ़ता से कहा। फिर टिप्पणी जोड़ी—मैं तो इससे भी मुश्किल और बदनामी वाली स्थिति से गुजर चुकी हूँ। जती, ससुराल को छोडकर आई थी—तब पूछो नहीं क्या हालत हुई थी सब की। यहीं नहीं सूझा था—क्या करूँ, क्या न करूँ।

मैं चुप रहा।

बस। कभी-कभी खुद खेल खेल लेता है। हम उलझते-सुलझते चलते

वही घास का फैलाव, वही सड़क, वही ऊँचे पेड़, सरसराती बयार और परिन्दों की चहक।

यहाँ आते ही—कैसा-सा मन हो जाता है। वह आराम से पैर पसारे हाथों को पीछे टेके हुए बोली।

मन मुक्त हो जाता है। मैंने कहा।

जी गाने को करता है। उसने कहा।

तो गाओ—फिल्म में तो अब तक गाना शुरू हो जाता। मैंने छेड़ा।

धुत्। गुनगुनाने का मन करना खुशी की उछाल हो सकती है, इसके यह मायने थोड़े ही हैं कि गाने लगें। आखिर हम कच्ची उम्र के नहीं हैं।

हाँ, हम कच्चे जवान नहीं रहे, पके हुए हो गए। जैसे आम फूस में पाल लगाने पर पीला और गदकारा हो जाता है।

तुलना नहीं गढ़नी। कविता करने नहीं आए हो। जत्ती ऐसे बोली जैसे क्लास में किसी को हिदायत दे रही हो।

हालत सही यह थी कि दोनों खुशी में थे और भावुक हो रहे थे। दोनों के चेहरे पर अपनत्व का उतावलापन था।

जत्ती अपना हाथ बढ़ाओ। मैंने कहा।

लो! उसने बढ़ा दिया।

मैंने उसकी हथेली चूम ली।

क्या करते हो। उसने हाथ खींच लिया। कोई देख ले तो…

बला से। मैं भावना में था।

सार्वजनिक जगह में किसी शरीफ़ लड़की से, इस तरह का व्यवहार… कानून की जानकारी अप-टू-डेट रखा करो श्रीमान। समझे! …नहीं समझे!

मैं तुम्हें यह बतलाना चाहता था कि मैंने तुम्हारे बारे में माँ से कह दिया।

क्या?

यही कि मैं तुम्हें चाहता हूँ और सज्जो की शादी के बाद तुमसे शादी करूँगा।

यह नहीं बताया कि मैं…

सब बता दिया। यह भी कि तुम्हारी शादी और तलाक हो चुका है।

क्या कहा उन्होंने ?

अभी वह कहती नही हैं हर विपरीतता को आघात की तरह ले लेती हैं—खामोशी अपनाकर।

और पिताजी ! जत्ती गम्भीर हो गई थी।

उनसे कहना बेकार है। सज्जो के मामले में जो रवैया अपनाया उससे जाहिर है उनकी मेरी हमेशा के लिये टूटेगी।

शशि, क्या वास्तव मे हम लोग नालायाक हैं ?

नही। माँ-बाप, हमे अपनी दुनिया मे खीचना चाहते हैं, जबकि हम उन्हे अपने मुलाविक साथ चलाना चाहते हैं। जिसमे सामर्थ्य होती है, वह अपनी दुनिया मे घसीट लेता है। मेरा हाथ उसकी तरफ़ फिर बढ़ा, पर उसने सम्भलकर बैठ जाने के साथ अपने हाथ गोदी मे रख लिये।

क्या हम जल्दबाज़ी नहीं कर रहे हैं ? उसने सोचते हुए कहा।

नही। मैं एक नतीजे पर पहुँचा हूँ।

क्या ?

जो निश्चय किया है, उसे टालना, परेशानियों और बेचैनियों को पालना है। मैं बड़े विश्वास के साथ कह रहा था।

इसका मतलब है मुझे भी मम्मी और डेडी को बताना होगा। वह एकदम चिन्तन मे हो गई थी। फिर बोली—अभी तो नौकरी शुरू की थी। तुम वास्तव मे जल्दी कर गये।

मेरा इरादा इतनी जल्दी बताने का नही था, लेकिन परिस्थिति ऐसी बन गई। मुझे माँ से कहना पड़ा। मैंने यही उचित समझा।

तुमने उचित समझा तो ठीक है।

जत्ती, एक महीने मे सज्जो की शादी करनी है। माँ-पिता शामिल नही होंगे। सुदर्शन और सज्जो की हिम्मत ने मुझे प्रेरित किया कि मैं निर्णय को लटकाऊँ नही। असलियत यह है कि मुझे तुम्हारी जरूरत है जत्ती। मैं जत्ती को भावना से सराबोर हो देखे जा रहा था।

मुझे, तुम्हारी। पर साथ रहने की तैयारियाँ बहुत दूसरी तरह से करनी होंगी। वरना सपने टूट जायेंगे वास्तविकता से टकराकर। फिर बोली,

सपनों भरी आँखों से क्यों देख रहे हो।

हाँ-हाँ, जत्ती! मैं इसीलिये यहाँ लाया तुम्हें। रोज की भाग-दौड़ में ऐसे निश्चय नहीं ले सकते, जिनका सम्बन्ध परस्पर की समझ और जिन्दगी के लम्बे सफर से हो।

ठीक है। तुम अपने साथ मुझे हर कदम पर पाओगे। उसने निश्चय से कहा।

वह मुझे देख रही थी। उसकी आँखों में इरादे की दृढ़ता थी—उस दृढ़ता के साथ झलकता हुआ अपनत्व।

यही तो था, जो मैं चाह रहा था। यही था जो जत्ती को मेरा केन्द्र बनाये हुए था। शायद यह मेरे उसके अन्दरूनी रागों की स्वर-संगति थी।

लो, मैं हाथ बढ़ा रही हूँ। उसने अपना हाथ मेरी तरफ बढ़ा दिया।

मैंने उसे पकड़ लिया—अब उसे चूम नहीं सकता था। मैं उस हाथ को कसावट दे रहा था। जैसे, ताकत का लेन-देन पूरा कर रहा था।

हम जब उठे तो शांत थे। इरादों से सख्त। पुख्ता।

अकसर लोग कहते हैं—जिन्दगी में ठहराव है, बासीपन है। कुछ है ही नहीं ऐसा जो तरोताज़ा रखे। बस रफ़्तार है और फालतू की व्यस्तता।

मैं अभी तक ठहराव महसूस नहीं कर पाया। रफ़्तार और व्यस्तता है तो फिर ठहराव कैसे हुआ? अनुभवों का हुजूम है, तो बासीपन कैसे? मन गिरता है, तो उठता भी है। थकान और जकड़न हावी होती है तो उससे ऊपर भी होते हैं।

मुझे लगता है हम कहीं भी हों, किसी भी हालत में हों—समस्याओं का सैंकड़ों घर वाला छत्ता—शहद भरा छत्ता—हमारे सामने होता है। मधुमक्खियाँ अपना डंक पैना किये भन-भनाती रहती हैं। उनसे बचना है, शहद निचोड़ना है।

लेकिन एक अतृप्त जिज्ञासा है जो सवाल लिये पहुँचती है हर माहौल तक, हर परिस्थिति तक—उससे उलझनी है, उसे समझना चाहती है।

जितना भी मैं जमा कर पाया था, वह सारा रुपया निकाला। थोड़ा गायत्रीजी से, थोड़ा अवतरमानी से कर्ज लिया। सज्जो और सुदर्शन को

बुलाया। अवतरमानी के क्वार्टर पर शादी की रस्म की।

डाक्टर साहब के साथ उनका परिवार आया, कमलकान्त और यूनियन के साथी आए। नरेश आया, दफ़्तर के दूसरे लोग आए।

नरेश बिल्कुल बदल गया है। दूसरी कम्पनी में वह बहुत अच्छी तंख्वाह उठा रहा है। उस पर ऊपर के वर्ग का मुलम्मा चढ गया है। पहला-सा मज़ाक नहीं, पहला-सा खुलापन नहीं।

शादी में व्यस्त होने की वजह से उससे सिर्फ औपचारिक हलो-हलो हो सकी थी। अवतरमानी बता रही थी वह तो बड़े ठसके से बात कर रहा था।

उसको शादी कम्पनी के ऑफीसर की बेटी से तय हो चुकी है। सब तय हो चुका है—कितना नकद देंगे, कितना उपहार की शक्ल में मिलेगा।

अवतरमाली ने बताया यह सच वह शायद इसलिये बता रहा था ताकि हम पर ज़ाहिर हो जाये, वह साधारण क्लर्क नहीं रहा। दर्जा बदला है तो वह भी बदला है।

कमलकान्त के प्रति अवतरमाली का पूर्वाग्रह ज्यों-का-त्यो है। बल्कि यूनियन के कुछ साथी, जो शादी के मौके पर आए थे, उन्हें देखकर उसकी धारणा और पक्की हो गई। वह प्रतिक्रिया को छिपा ही नहीं सकती। जत्ती को आगे बढा दिया था, उस तरफ़ की आवभगत को तुम देखो, मुझे यो लोग नहीं जंचते।

मुझ से बाद में पूछा था—तुम ऐसे लोगों के साथ कैसे रहते हो? बड़े 'क्रूड' लगते हैं?

जत्ती से जब कमलकान्त और अन्य का परिचय करवाया था तब तो वह निष्पक्ष-सी थी। न विशेष प्रभावित, न विरुद्ध।

डाक्टर असर्फीलाल जी बारात को संभाल रहे थे। बारात तो नाम था—कुल बारह व्यक्ति थे। अनुराम अपने क्लब के साथियों को लाया था—अच्छा कार्य-क्रम आयोजित किया था। गाने और ऑर्केस्ट्रा। गायत्री-जी, अवतरमाली की माँ और रत्ती अन्दर की सम्भाल में थी। रत्ती, सज्जो की दोस्त बन गई थी।

एक उत्सव-सा हुआ, बीत गया। मैं सज्जो से यह भी नहीं पूछ

कि भविष्य के बारे में क्या सोचती है। उसने विदा होते समय मुझ से सिर्फ इतना कहा था—भैया, तुम भी अगर माँ-पिता की तरह रुकावट बन जाते, तब क्या होता? शादी तो सुदर्शन से ही करती—मेरा कोई नहीं रहता घर की तरफ़ से।

साफ़ था कि सज्जो ने तय कर लिया है कि माँ-पिता से ताल्लुक नहीं रखेगी। घाव बहुत हरे थे। छूना भी सगत नही था।

मैं आभारी हुआ डाक्टर साहब और गायत्रीजी का, अवतरभानी का। जत्ती की उपस्थिति खुद में मेरी हिम्मत थी।

पन्द्रह दिन बाद मैंने माँ को पत्र लिखा।

माँ, सज्जो की शादी ढंग से हो गई। तुम्हें खुशी होनी चाहिये कि उसे लड़का और ससुराल दोनों अच्छी मिली हैं। पिताजी अगर बेटे को जिद्दी और नालायक समझते हैं तो समझें। मैंने कतई परवाह करना छोड़ दिया है। हाँ, चाहता हूँ कि तुम यह विश्वास करो कि मैंने जो किया, वह सज्जो की जिन्दगी को सुखी बनाने के लिये किया। डाक्टर साहब के परिवार ने इस मौके पर मेरी बहुत मदद की। यह वही परिवार है जिनकी बड़ी लड़की जत्ती है—जिसके बारे मे तुम्हें बता चुका हूँ।

मैं उस लड़की से शादी करूँगा—यह नहीं कह सकता कब सम्भव होगा। खर्चे में दब गया हूँ, पहले इससे छुटकारा पाने की कोशिश करूँगा?

अभिवादन या सम्बोधन तो औपचारिक होते हैं, मैंने माँ को पत्र लिखा इसलिये कि वह अपने को उपक्षेति न समझें।

महीने से ज्यादा समय बीत गया तब माँ का लिखवाया हुआ पत्र अचानक मिला। सही बात यह है कि मैं आशा छोड चुका था कि वह जवाब देगी।

तुम्हारा पत्र मिला। सूचना यहाँ भी मिल गई थी चाहे वह तुम्हारे पिता की गालियों के साथ मिली हो। वह तिलमिला भी रहे हैं लेकिन बेबस हैं। बेटे और बेटी ने जितनी धूल उछालनी थी, उछाल दी। कह रहे थे, जी मैं ऐसा आता है खुद जहर खा लूँ और तुम्हें भी दे दूँ। लेकिन कहने की बात

दूसरी होती है—मैंने कौन-सा जहर खा लिया, जो वह खायेंगे।

पूछ रहे थे जत्ती कौन है?

जितना तुमने बताया था, बता दिया। गंदी जवान तो उनकी बोल-चाल मे आ गई है। कहने लगे—यह दोनों मेरे खून नहीं हैं। तू बदचलन रही है।

समझ गये, औरत किस तरह से पति द्वारा बदचलन करार दी जा सकती है।

मैं उस दिन फट पड़ी और उनके करम बखान दिये। जवानी से बुढ़ापे तक चिट्ठा पढा दिया उन्हें।

कह रहे थे तलाक लडकी से शादी करने से बहतर था किसी वैश्या को घर मे बैठा लेता। बाप का नाम झंडे-सा फरफराता।

तूने लिखा विश्वास करो जो किया सज्जो की जिन्दगी की अच्छाई के लिये किया। सो ठीक है। मैं न भी करूँ तो क्या फ़र्क पड़ता है।

किसी की औरत थी उसने औरत का दर्जा पैर की चप्पल समझ कर दिया। माँ थी, बेटी की—उसने अपने स्वार्थ के लिये, क्या नही बिताया मेरे पर। बेटा कही मोह रखता है, तो वह थोड़ा-सा मुझ मे बाकी है।

तेरी जैसी मर्जी आए कर, मेरे लिये, तेरा रास्ता भी बन्द हो गया। यह मुझे नही चाह सकते, मैं इन्हें छोड़ नही सकती। भगवान से यही कहती हूँ जितनी जल्दी उठा सके, उठा ले। अगली बार घूरे का कीड़ा बना दीजियो, औरत का जनम मत दीजियो।

तू जिस तरह खुश रह सके रह।

माँ ने खत लिखवाया। ताज्जुब हुआ लिखने वाली पर—कितना हू-बहू भावनाओं का पत्र लिखा।

खत की भावना और भाषा का तालमेल बैठ सकता है, लेकिन उसके पीछे जो माँ है एक टूटी हुई जिन्दगी की हर ख्वाहिश से बेदखल माँ, उसको परेशानी और दर्द को मैं, सिर्फ मैं अनुभव कर सकता हूँ। फिर भी क्या जीवन ठहरता है? बुस जाता है? नहीं, रेंगते हुए भी आशा की तपिश से अकुलाता रहता है।

मैं कल्पना कर सकता हूँ माँ जितनी अन्दर से टूटती होगी, उसी

कि भविष्य के बारे मे क्या सोचती है। उसने विदा होते समय मुझ से सिर्फ इतना कहा था—भैया, तुम भी अगर माँ-पिता की तरह रुकावट बन जाते, तब क्या होता ? शादी तो सुदर्शन से ही करती—मेरा कोई नहीं रहता घर की तरफ़ से।

साफ़ था कि सज्जो ने तय कर लिया है कि माँ-पिता से ताल्लुक नहीं रखेगी। घाव बहुत हरे थे। छूना भी संगत नहीं था।

मैं आभारी हुआ डाक्टर साहब और गायत्रीजी का, अवतरमानी का। जत्तो की उपस्थिति खुद मे मेरी हिम्मत थी।

पन्द्रह दिन बाद मैंने माँ को पत्र लिखा।

माँ, सज्जो की शादी ढंग से हो गई। तुम्हें खुशी होनी चाहिये कि उसे लड़का और ससुराल दोनों अच्छी मिली हैं। पिताजी अगर बेटे को जिद्दी और नालायक समझते हैं तो समझें। मैंने क़तई परवाह करना छोड़ दिया है। हाँ, चाहता हूँ कि तुम यह विश्वास करो कि मैंने जो किया, वह सज्जो की जिन्दगी को सुखी बनाने के लिये किया। डाक्टर साहब के परिवार ने इस मौके पर मेरी बहुत मदद की। यह वही परिवार है जिनकी बडी लडकी जत्तो है—जिसके बारे में तुम्हें बता चुका हूँ।

मैं उस लडकी से शादी करूँगा—यह नही कह सकता कब सम्भव होगा। खर्चे मे दब गया हूँ, पहले इससे छुटकारा पाने की कोशिश करूँगा ?

अभिवादन या सम्बोधन तो औपचारिक होते हैं, मैंने माँ को पत्र लिखा इसलिये कि वह अपने को उपक्षेति न समझें।

महीने से ज्यादा समय बीत गया तब माँ का लिखवाया हुआ पत्र अचानक मिला। सही बात यह है कि मैं आशा छोड़ चुका था कि वह जवाब देगी।

तुम्हारा पत्र मिला। सूचना यहाँ भी मिल गई थी चाहे वह तुम्हारे पिता की गालियों के साथ मिली हो। वह तिलमिला भी रहे हैं लेकिन बेबस हैं। बेटे और बेटी ने जितनी धूल उछालनी थी, उछाल दी। कह रहे थे, जी मैं ऐसा आता है खुद जहर खा लूँ और तुम्हें भी दे दूँ। लेकिन कहने की बात

दूसरी होती है—मैंने कौन-सा जहर खा लिया, जो वह खायेंगे।

पूछ रहे थे जत्ती कौन है?

जितना तुमने बताया था, बता दिया। गंदी जबान तो उनकी बोल-चाल में आ गई है। कहने लगे—यह दोनों मेरे खून नहीं हैं। तू बदचलन रही है।

समझ गये, औरत किस तरह से पति द्वारा बदचलन करार दी जा सकती है।

मैं उस दिन फट पड़ी और उनके करम बखान दिये। जवानी से बुढ़ापे तक चिट्ठा पढ़ा दिया उन्हें।

कह रहे थे तलाक लड़की से शादी करने से बहतर था किसी वैश्या को घर में बैठा लेता। बाप का नाम झंडे-सा फरफराता।

तूने लिखा विश्वास करो जो किया सज्जो की जिन्दगी की अच्छाई के लिये किया। सो ठीक है। मैं न भी करूँ तो क्या फ़र्क पड़ता है।

किसी की औरत थी उसने औरत का दर्जा पैर की चप्पल समझ कर दिया। माँ थी, बेटी की—उसने अपने स्वार्थ के लिये, क्या नहीं बिताया मेरे पर। बेटा यही मोह रखता है, तो वह थोड़ा-सा मुझ में बाकी है।

तेरी जैसी मर्जी आए कर, मेरे लिये, तेरा रास्ता भी बन्द हो गया। यह मुझे नहीं चाह सकते, मैं इन्हें छोड़ नहीं सकती। भगवान से यही कहती हूँ जितनी जल्दी उठा सके, उठा ले। अगली बार घूरे का कीड़ा बना दीजियो, औरत का जनम मत दीजियो।

तू जिस तरह खुश रह सके रह।

माँ ने खत लिखवाया। ताज्जुब हुआ लिखने वाली पर—कितना हू-ब-हू भावनाओं का पत्र लिखा।

खत की भावना और भाषा का तालमेल बैठ सकता है, लेकिन उसके पीछे जो माँ है एक टूटी हुई जिन्दगी की हर ख्वाहिश से बेदखल माँ, उसकी परेशानी और दर्द को मैं, सिर्फ मैं अनुभव कर सकता हूँ। फिर भी क्या जीवन ठहरता है? रुक जाता है? नहीं, रेंगते हुए भी आशा की तपिश से अकुलाता रहता है।

मैं कल्पना कर सकता हूँ माँ जितनी अन्दर से टूटती होगी, उसी

कदर सपनों मे विचरती होगी। वह कैसे सपने होगे? पिता से लडने के—क्योंकि मोह वह काट नहीं सकती—या शीघ्र की मृत्यु के; जो न उसके हाथ मे है, न किसी के हाथ मे।

रोजमर्राह की व्यस्तता और गति क्या किसी को बख्शती है कि ठहराव और बासीपन स्वीकार कर ले?

मैं फिर यूनियन के कार्यालय जाने लगा हूँ। पहले समय को भरने जाता था, लेकिन जाते-जाते लगाव-सा हो गया। वह हड़ताल खत्म हुई लेकिन उसका प्रभाव छिपकली की दुम-सा यूनियनों के बीच लहरा रहा था। दुम कटी हुई थी या छिपकली से जुड़ी, मालूम नही पड रही थी। एक फाँट बहुत साफ होकर सामने आयी थी। सत्ता पक्ष की मजदूर यूनियन सिर्फ संघर्ष से कतराती नही थी, दूसरी यूनियनो का अनुभव था वह फैक्टरी मालिकों और मिलमालिकों की छिपे तौर पर हिमायत लेती थी। वाम पथी सगठन मिलकर इस नतीजे पर पहुँच रहे थे कि चाहे हम अपने संगठनो के लिये अलग-अलग कार्य करें लेकिन संघर्ष के मौके पर हमे एकजुट होना चाहिये।

मुझे यह कोशिश अच्छी लग रही थी। मजदूरो की ताकत बिखरने के बजाये समझौता बनाकर चले तो नतीजे जल्दी व ठोस निकल सकते है। लेकिन शान्तिकाल के यह प्रयास अगर परीक्षा पर सफल हों तभी कोई मायने रख सकते है। परीक्षा होगी फिर किसी दूसरे संघर्ष के समय।

कमलकान्त से इस बारे मे विस्तृत बहस हुई। मैंने कहा—साथी, हमारे यहां खण्डित होते जाने की बीमारी क्यो है? राजनीतिक दल हैं तो जरा-जरा से बहानो पर टूटते है। सगठन हैं, तो वह भी बंटते है। सम्प्रदाय हैं या आध्यात्मिक संस्थान, शिष्य गुरुओं से विद्रोह करते हैं, अपना नया मत खडा कर देते हैं।

कमलकान्त बहस में ज्यादा विश्वास नही करता लेकिन मेरी जिज्ञासा उसे जवाब देने के लिये बाध्य कर देती है। वह बोला—शक और अहम्, मुझे यही दो कारण दीखते है। इससे भी गहरा कारण है उद्देश्य से ज्यादा फ़ायदो पर नजर। अहम् अनुशासन और किसी दूसरे की सत्ता

दोनों में नही बंधना चाहता।

मैंने पूछा—तब ? तब तो सफलता खतरे में पड़ती है।

हाँ, यही होता है। हमारा बिखराव सिर्फ़ हमें कमजोर नही बनाता, वह उनको सहायता देता र जो हमें बांटते रहने में अपना हित पाते हैं।

इससे अच्छी है—एक की सर्वोपरि सत्ता। एक दल।

उसमे भी गुराव पैदा हो जाते हैं—तब आंतरिक संघर्ष और प्रतियोगिता शुरू हो जाती है।

इस तरह की बहस अकसर कमलकान्त से होती है। मुझे लगता है मैं बहुत से बिन्दुओं पर उससे सहमत होता हूँ कुछ बिन्दु असहमति पाते हैं। कमलकान्त की तरफ़ से एक सुझाव आया—तुमने लॉ पढ़ रखा है, वकालत क्यो नही करते ? मजदूरों के वकील बन सकते हो।

कमलकान्त के सुझाव में दम था। लेकिन मैं नौकरी छोड़ने का खतरा नही ले सकता। बाकी प्रेक्टिस के लिये किसी वकील का एसिस्टेंट होना होगा।

वह मेरे पर छोड़ो। कमलकान्त ने इन्तजाम की जिम्मेदारी ली।

मैंने जत्ती से पूछा तो उसने कहा—तुम्हारी मर्जी पर है। पर नौकरी छोड़ोगे तो आमदनी टूटेगी।

जत्ती, मैं नौकरी नही छोड़ सकता ?

वकील बनना चाहोगे तो करना होगा।

रास्ता निकालूंगा—अगर निकल सका।

और यह पार्क क्या है, अजीब तरह से जुड़ गया है हमसे। अवतरमानी ने आग्रह और आदेश के मिले स्वर मे एक दिन कहा—शशि ! मैं आज पार्क चलना चाहती हूँ तुम्हारे साथ, चलोगे ?

परेशान हो ?

हाँ।

तो चलना ही पडेगा।

मैं रास्ते मे सोच रहा था यह पार्क क्या हम लोगों के लिये मुक्ति-केन्द्र है। महीने, दो महीने, चार-छः महीने जिन्दगी की भभक से भरो, फिर घुटने लगो तो एकान्त और हरे दरख्तों की शरण ले लो।

दो। दो।

कभी मैं, जत्ती। कभी मैं, अवतरमानी।

हम उसी कोने में, उसी जगह पहुँचे।

राहत मिलती है ना आकर ? मैंने पूछा।

हाँ, ऊपरी पटाव को तड़का कर अन्दर जाने की इच्छा होती है—अपने अन्दर जाने की अवतरमानी ने कहा।

मैं यहाँ दो बार जत्ती के साथ आया। मैंने बताया।

उसे पाया, या खोया ? अवतरमानी मुझे देख रही थी।

पाया ! दोनों बार दूसरे-दूसरे रूप मे पाया। आखिरी निर्णय के रूप मे भी।

हाँ, मुझे पता है, तुम दोनो जल्दी एक होने जा रहे हो। किस्मत वाली है। अवतरमानी के ठंडी साँस-सी निकली।

तुम भी क्यो नही···

मैंने अपना रास्ता अपने आप बन्द कर रखा है—चाहती भी नहीं कि मुझ तक कोई आए, मुझे खटकाये। तुम बता रहे थे जत्ती का घर में कहना बाकी है ? क्या वह कह नहीं पा रही है ?

उसने माँजी से कह दिया। डॉक्टर साहब तक बात नही पहुँची है। मैं सोचता हूँ वह रुकावट नही डालेंगे। लेकिन···मैं रुक गया।

लेकिन क्या ?

मैं दुविधा में हो गया हूँ। कमलकान्त ने सुझाव दिया है मैं वकालत शुरू करूँ।

यह नही कहा कि नौकरी छोडकर भूखे मरो। अवतरमानी का पारा चढ़ गया। फिर बोली—यह लोग सही राय कभी दे सकते हैं। भूखों की भूख से खेलना इनका शौक बन गया है।

भड़काने वाला विषय उठ गया। मैं डरा।

तुम्हें क्या मिला अब तक ? सीधी-साधी जिन्दगी रास नहीं आती जो रोग पालते फिरते हो।

सॉरी, मैं कौन होती हूँ तुम्हारी जिन्दगी मे दखल देने वाली।

होती हो। हमने हमेशा एक दूसरे के सुझाव पर ग़ौर किया है। मैंने

सामान्य करने के लिये कहा ।

गलत कह रहे हो । न मैंने तुम्हें आज तक माना, न तुमने कभी मुझे माना ।

चाहा भी नहीं । मैंने छेड़ा ।

यह मैंने नहीं कहा । पर अब एक फर्क और होने जा रहा है शचि—बहुत बड़ा फ़र्क़ । अवतरमानी का स्वर कड़ापन छोड़ रहा था ।

क्या ?

मैंने पहले कहा था किन्हीं पलों में हम निजी तौर पर बिल्कुल अकेले हैं—सूने और सन्नाटा भरे। उसी का भराव हम तुम खोज रहे थे—साथ-साथ । तुम्हारा वह अकेलापन भर गया, जत्ती को पाकर।

हाँ, अवतरमानी ! इसीलिये मैं कहता था तुम भी···

किसी को खोज लो । है, ना ? अवतरमानी सूखी-सी मुस्कराहट ला सकी होठों पर ऐसी जो खुद उसी पर व्यंग्य बन रही थी । पल भर रुक कर बोली—मेरी माँ, पुरुष की हैवानियत का सबूत बनकर मेरे सामने है, अभागी को देखो, जिसने सारी जिन्दगी उसको तासा, ज़लील किया, उसी की याद में घुलती हैं । उसकी तस्वीर की पूजा करती है ।

मुझे यकायक माँ की याद आई । उसने भी तो धार रखा है पिता को नहीं छोड़ेगी चाहे बेटे को छोड़ दे । मैं सोच में डूब गया । फिर मेरी आँखें नम हो उठीं ।

अवतरमानी अपने में छूटी तो बोली—तुम्हें क्या हुआ ? तुम्हारी आँखें···।

मेरी माँ भी बेटे को छोड़ सकती है—पति को नहीं । मैं तिनका उठाकर चबाने लगा—कच-कच ।

तुम क्या सोचते हो मैं पिता को हटाती तो, माँ मेरे पास रहती—हर्गिज़ नहीं । मुझे अकेला रहना होता । वह तो रहना होगा, माँ अमर होकर नहीं आई है ।

तब क्या करोगी ? मैंने पूछा ।

मुझे क्या पता तब क्या करूँगी ? इतना पता है नौकरी करूँगी । उसके अलावा नहीं पता ।

तुम चाहो तो अपने मन की घृणा को हटा सकती हो अवतरमानी !.
मैंने बहुत सम्भलकर कहा। गनीमत थी वह चिढ़ी नही।

घृणा हटा भी ली तो विश्वास कहाँ से पैदा करूँगी। विश्वास नहीं होगा तो जिन्दगी दो की खराब होगी—हो सकता है दो से ज्यादा की हो जाये। अपनी खराब करने का हक है—पर दूसरे की क्यों करूँ। फिर बोली—मैं अन्दर से मर चुकी हूँ शशि, मेरी वो भावनाएँ जो किसी की चाह जगाती हैं, लकवा खाकर सुन्न हो चुकी है। पता नही तुम कैसे इतने अपने हो गये।

अवतरमानी की आँखों में भावनाएँ उठ आईं। वह बैठी-बैठी जैसे किसी प्रभाव मे हो गई। शशि, तुम उस दिन लेटे थे और मैं घबराकर चिल्ला पडी थी तुम पर। क्या आज वैसे नही लेटोगे ?

मैं सकते में आ गया। लेकिन उसके आदेश से सम्मोहित लेट गया। वह देखती रही। फिर उसने हाथ बढाया और मेरे माथे को सहलाने लगी—फिर बालों को। वह भर-भर रो रही थी।

अवतरमानी ! मैंने धीरे से पुकारा।

लेकिन वह जैसे सुन नही रही थी।

सुनो ! सुनो अवतरमानी !

पर वह मूर्ति-सी बैठी थी, हाथ रुक गये थे। मुझे डर लगा वह गिर न जाये।

मैं धीरे से हाथ हटाकर उठा। उसे सहारा दिया।

अवतरमानी !···अवतरमानी···मैंने मुँह कान तक पहुँचाया और ज़ोर से बोला।

वह हल्की-सी होश में आई। फिर जैसे सीने पर लुढककर फूट-फूटकर रो पड़ी।

मैं बुत हो गया। सोच नही पाया उसे क्या हुआ ? क्यों हुआ ?

देर बीते वह अपने मे लौटी। मुझसे अलग हो गयी।

शशि ! क्या तुम जत्ती के बाद भी मुझे चाहोगे ? विश्वास रखो मैं जिन्दगी सिर्फ इसी चाह के सहारे काट सकती हूँ। इससे ज्यादा न दे सकती हूँ। न लेने की इच्छा रखती हूँ।

अपनी जान में मैं तुम्हारा विश्वास नहीं तोड़ूँगा। मैंने पूरी आस्था और दृढ़ता के साथ कहा।

वह क्षण-भर में फिर सामान्य हो गई—बल्कि हमेशा-सी प्रसन्न।

हम चले आये वहाँ से—आना ही था।

गायत्री जी से जत्ती के कहने पर यह नामुमकिन था कि वह मुझ से बात न करती। वह मेरे कमरे में खुद आई थी।

शशि, जत्ती कह रही थी कि तुम दोनों शादी करना चाहते हो।

जत्ती ने मुझे पहले न बता दिया होता तो उनके सीधे पूछने पर मैं निश्चित रूप से मिटपिटा जाता। मैंने जवाब दिया—अगर आप चाहेंगी तब।

मेरे न चाहने की क्या वजह हो सकती है? तुम्हें मैंने अच्छी तरह से समझ रखा है, लेकिन क्या तुम स्थिति का सामना कर सकोगे? वह कुर्सी पर आराम से बैठी हुई थी। और दिनों से ज्यादा गम्भीर थी। हो सकता है वह सहज हो, मुझे गम्भीर लग रही हो।

कैसी स्थिति? मैंने उनकी आँखों को टोहना चाहा।

मरी हुई चर्चा एक बार फिर उठ सकती है।

जत्ती ने आपको बताया। मैं माँ से उसके साथ हुई दुर्घटना बता चुका हूँ। मैंने पाया कि मेरी उँगलियाँ अपने हाथ की उँगलियों में फँसी हैं। आपस में चटखाने का प्रयास कर रही हैं।

उसने बताया था। माँ और पिता सज्जो की शादी नहीं पचा सके, इस शादी को अपनाना तो असम्भव है।

वह निर्णय उनकी तरफ से आ गया। इस लिहाज से मैं अकेला हूँ, यही समझिये। बाकी आप लोग हैं। मैं धैर्य से कह रहा था।

यह शादी उस तरह से नहीं हो सकती, जैसे पहले हुई थी। हमारे खुद के रिश्तेदार नहीं आएँगे।

न आएँ। सज्जो के लिये किसी को नहीं बुला सका तो आप लोगों के सहारे हो गई।

एक कड़वा सत्य कहूँ शशि! हमारा सहारा महज रस्मी था। खिला-

[illegible]

का सवाल होगा। हम किनारे पर नहीं, बीच धार में होंगे, जहाँ तुम और जत्ती होंगे। हालाँकि यह चर्चा भी थोड़े दिन रहेगी—फिर सब खामोश होकर अपने धंधों में लग जाएँगे। कब तक इरादा है ?

गायत्री जी के पूछते ही मैं गड़बड़ा गया। मुझे अब अहसास हुआ वह मुझे सारे निर्णयों का हकदार मान रही हैं, खुद को तटस्थ रख कर। यह स्थिति उलझन वाली थी। मैं चुप रह गया। शायद मेरे चेहरे पर घबराहट आ गई थी।

क्यों ? घबरा क्यों रहे हो ?

आप सब-कुछ मुझ से पूछ रही हैं। जैसा कहेंगी वैसा होगा। मैं आप से राय लेना चाहता था।

कब करो, इस बारे में ?

जी नहीं, दूसरी बात के बारे में। मेरे दोस्तों की सलाह है मैं वकालत करूँ। आपको पता है मैं यूनियन के दफ़्तर में भी काम करता हूँ। वे लोग चाहते हैं उन्हें मजदूरों के मुकदमे के लिये उनका वकील मिल जाये।

नौकरी छोड़ कर कैसे हो सकेगा ? वकालत का जमना लम्बा समय लेता है। कमाने का कोई स्थाई ज़रिया पहले बनाना होगा। पर मैं एक राय और देना चाहती थी। तुम लोगों ने साथ होने का तय किया है तो इसे ज्यादा नहीं टाल सकोगे। बाहर साथ जाओ-आओगे, नाहक लोग बातें गढ़ेंगे। मैं तुम्हारी राय लेने के बाद डाक्टर साहब को अन्तिम तौर पर बताना चाहती थी।

अब तक मेरी झिझक खत्म हो गई थी। मैंने स्पष्ट कहा—अभी मुझ पर आपका और अवतरमानी का कर्ज है। सोचता हूँ पहले यह निबटा दूँ, कुछ जमा कर लूँ तब करूँ। क्या हम साल भर का समय नहीं ले सकते।

ले सकते हो, लेकिन सम्भल कर चलना होगा। बहतर होगा तुम कोई दूसरा कमरा देख लो। दूर रहोगे तो मोहल्ला चुप रहेगा। बाहर भी जत्ती से कम मिलना होगा। मैं सही कह रही हूँ ना ?

गायत्री जी कहकर चुप हो गईं। मेरे पास हाँ कहने के अलावा दूसरा रास्ता नहीं था।

वह हामी भरवाकर चली गईं।

उस रात मैं सो नहीं सका। गायत्री जी की शर्तें वाजिब थी, लेकिन वही होने जा रहा था, जिससे मैं उस दिन से डरता रहा था जिस दिन से किराये के कमरे में आया था। उस वक्त यह भय था कि चलताऊ, आवारा लड़का न समझा जाऊं। कि लड़कियों की वजह से कमरा छोड़ना न पड़ जाये।

कमरा आसानी से कहाँ मिलता है। फिर अपने से लोग। मैंने जत्ती से कहा तो वह भी सुस्त हो गई।

गायत्री जी खुद इधर-उधर कहकर मेरे लायक कमरा देख रही थीं। मैं भी खोज रहा हूँ।

मिल गया तो इस पूरे परिवार से अलग होना होगा। और वह अकेलापन और परायापन फिर शुरू होगा, जो उस कमरे का होगा।

जत्ती ने पूछा—यह सजा किसलिए। हम खुद में समझदार हैं।

मैंने मुस्कराकर उत्तर दिया—समझदार हैं, तभी तो अलग होना होगा। मैंने जत्ती से कहा—मैं कोशिश करके शाम और रात ड्यूटी का काम देखूंगा। बैठ गया तो वकालत के लिये किसी वकील के साथ कार्य सीखूंगा।

मैं क्या करूँगी? इस कमरे के सामने से गुजरूँगी तब? जत्ती भोलेपन से पूछ रही थी। फिर अपने आप बोली—मम्मी से कह दूँगी, इस कमरे में कोई किरायेदार नहीं आयेगा जब तक…

कब तक? मैंने उसे छेड़ा।

जब तक मैं तुम्हारे पास नहीं आ जाती।

* * *